वर्ष 2 अंक 5
अप्रैल–जून, 2012

कालोऽन्यः कलनात्मकः

प्राच्य मंजूषा

पं0 बैजनाथ शर्मा प्राच्य विद्या शोध संस्थान
मैण्डू, हाथरस (उ.प्र.)

प्राच्य मंजूषा

त्रैमासिक शोधपरक पत्रिका

वर्ष : 2 माह : अप्रैल, मई, जून 2012 अंक : 5

सहयोग राशि :
50/– : एक प्रति
200/– : वार्षिक
2000/– : आजीवन

पं0 बैजनाथ शर्मा प्राच्य विद्या शोध संस्थान
मैण्डू, हाथरस (उ. प्र.)

संरक्षक :

डॉ. एस. एस. गुप्त, डॉ. विष्णु विराट,
डॉ. श्रीमोहन प्रदीप, डॉ. रामकुमार पाठक

प्रधान सम्पादक :

डॉ. अशोक शर्मा

सम्पादक :

डॉ. राजेश कुमार

सम्पादक-मण्डल :

डॉ. वेदप्रकाश 'अमिताभ'
डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा
आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी
डॉ. बी. पी. सिंह

सम्पादन-सहयोग :

डॉ. राजेश गोस्वामी
श्री देवेन्द्र गोयल
श्री त्रिलोकीनाथ अग्रवाल
श्री मदनमोहन

टंकण : जे. के. कम्प्यूटर ग्राफिक्स, हाथरस

पत्राचार का पता :

'आशा निलय', श्याम मिल कम्पाउण्ड, नवीपुर रोड,
हाथरस-204101 (उ0प्र0) भारत

http://www.ptbn.in http://www.prachyamanjusha.in
email : prachyamanjusha1@gmail.com

सम्पादकीय

आज यह देख कर बड़ी हैरानी होती है कि आम आदमी अपनी बुद्धि का प्रयोग बहुत कम करने लगा है और इस दृष्टि से बड़े–बड़े पढ़े–लिखे लोग भी आम आदमी ही हैं। लोग "महाजनो येन गतः स पंथः" में इतना अधिक विश्वास करने लगे हैं कि पीछे वाली भेड़ की तरह आगे वाली भेड़ के पीछे–पीछे कुआ या खाई में भी गिर जाने को तैयार रहते हैं। उनके निर्णय उन पर कम, दूसरों पर अधिक निर्भर रहने लगे हैं। स्कूली बच्चे ही नहीं कॉलेजिएट भी छोटे–छोटे हिसाब लगाने के लिये कैल्कूलेटर पर निर्भर रहने लगे हैं। छोटी–छोटी बीमारियों के लिये भी बड़े–बड़े डॉक्टरों पर निर्भर रहना लोग अपनी शान समझते हैं। पूजा–पाठ में पुरोहितों पर निर्भरता, कारोबार में, परिवार के निर्वहन में; यहाँ तक कि सामाजिक सरोकारों में भी ज्योतिषियों और वास्तु शास्त्रियों पर निर्भरता और ज्ञान के लिये पुस्तकों पर निर्भरता आम आदमी की आदत बन गया है। उत्तर प्रदेश की परीक्षाओं को देख कर तो लगता है कि विद्यार्थी का ज्ञान और उसकी परीक्षा देने की क्षमता उसकी अपनी बुद्धि पर नहीं, अभिभावकों के अर्थ भरे प्रयत्न और नकल माफियाओं के कला–कौशल पर निर्भर है। सन्तों का सन्तत्व, उनके द्वारा संचालित मठों, आश्रमों और मन्दिरों पर निर्भर है। महात्माओं की महानता उनकी वेष–भूषा पर निर्भर है। विद्वानों की विद्वत्ता उनके पद पर निर्भर है। यहाँ तक कि स्त्रियों का सम्पूर्ण सौन्दर्य भी साबुनों, क्रीमों और पाउडरों पर निर्भर हो गया है। कभी–कभी तो लगता है, दुनिया में कोई भी आत्म निर्भर नहीं है।

वस्तुतः जब ज्ञान–विज्ञान अपनी उँचाइयों को छूने लगता है। तब वैज्ञानिकों, चिन्तकों और साहित्यकारों के पास बहुत कुछ करने को नहीं रहता। वे या तो पिष्टिपेषण करने लगते हैं या किये हुए की पुनर्व्याख्या करने में लग कर गुण–दोष विवेचन में जुट जाते हैं। ऐसे ही कुछ लोगों की एक शाखा सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान को सर्व सुलभ बनाने के व्यवसाय में जुट जाती है। वे हर चीज़ की कुञ्जी तैयार करने लगते हैं। फलतः धीरे–धीरे मनुष्य को अपनी बुद्धि ऐसे ही लोगों के हाथ बन्धक बनाने में समग्र श्रेय और प्रेय दिखाई देने लगते हैं। कैसी–कैसी कुञ्जियाँ हैं। विद्यार्थियों को ज्ञान प्राप्ति के लिये किताबों की कुञ्जी, व्यवसाय में उन्नति एवं परिवार की सुख समृद्धि के लिये विभिन्न नगों से युक्त अँगूठियों और सिद्ध यन्त्रों की कुञ्जी।

परीक्षा में पास होने के लिये विभिन्न प्रकार की स्याहियों को प्रयोग करने की कुञ्जी। इहलोक और परलोक सुधारने के लिये अनेक प्रकार के देवी–देवताओं और पूजा–पाठ की कुञ्जी। पढ़े–लिखों के लिये कैरियर बनाने की कुञ्जी। बस आप कुञ्जी ले लीजिये और भव सागर पार हो जाइये। फिर ज्ञान और बुद्धि की क्या आवश्यकता है ? इन को विकसित करने में क्यों वख्त ख़राब किया जाय ? जब हर समस्या का समाधान सहज ही उपलब्ध है तो बुद्धि की क्या जरूरत है। हाँ, जरूरत है तो सिर्फ़ पैसे की। पैसे फैंको और तमाशा देखो। पैसा है तो सब काम हो जाँयगे। पैसा है तो आप ही परम बुद्धिमान और ज्ञानी हैं। लोग सोचते हैं पैसे से बुद्धि भी ख़रीद लेंगें। पैसा सबसे बड़ी चीज़ है–––

टका धर्मः, टका कर्मः टका हि परमं तपः।
यस्य गेहे टका नास्ति हाटका टकटकायते॥

लोग सोचने लगे हैं कि बुद्धि से धन की नहीं, धन से बुद्धि की प्राप्ति होती है। पैसा तो छीन–झपट के भी प्राप्त हो सकता है। जिस समाज में बुद्धि के प्रति ऐसा व्यर्थता बोध हो, उस समाज में मनुष्य बुद्धि का प्रयोग कैसे और क्यों करेगा ?

लेकिन मजेदार बात ये है कि आज हर आदमी बुद्धिमान है। आप देखिये समाज में हर तीसरा आदमी डॉक्टर है। जरा किसी की अँगुली चिर जाय, देखिये उसे कितने डॉक्टर मिलते हैं; वे भी बिना फ़ीस दिये। कोई कहेगा, इस पर बीड़ी का काग़ज चुपकाइये; कोई कहेगा पनकपड़ा बाँधिये; कोई कहेगा टिटनिस का इञ्जैक्शन लगवाइये। क्योंकि जिस की अँगुली चिरी है वह भी तो परमूत्र चिकित्सा में विश्वास रखता है। इसी तरह हर व्यक्ति भाषाविद् है, हर व्यक्ति पण्डित है, हर व्यक्ति ज्योतिषी है। मूल बात यह है कि हर व्यक्ति बुद्धिमान और ज्ञानी है। उस पर भी तुर्रा ये कि बिना बुद्धि का प्रयोग किये सब काम बना लेने में ही बुद्धिमानी है।

अनुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृष्ठ
धर्म और रिलीजन	डा. अशोक शर्मा	6–15
भारतीय धर्म साधना में.....	डा0 विद्या रानी	16–17
दर्द की गुंजलक से	डा0 प्रभाकर शर्मा	18–20
भेंटवार्ता : डा0 गोपाल बाबू शर्मा के साथ		21–25
जयशंकर प्रसाद के काव्य में	प्रोफेसर सुरेश चन्द्र	26–41
स्त्री–विमर्श	रजनी सिंह	42–43
पाती अनुप्रासों के नाम रुपकों की	शंकर द्विवेदी	44–45
दो कविताएँ	कु0 नेहा भारद्वाज	46
प्रगति विवरण	डा0 राजेश कुमार	47–48
ईक्षण	डा0 ज्ञानेन्द्र माहेश्वरी	48
पाठकों के पत्र		49–51
विज्ञापन		52–56

अनन्य चिंतन

धर्म और रिलीजन

डॉ. अशोक शर्मा

बचपन से ही मेरे मन में घुमड़ने वाली बहुत सी समस्याओं में से एक धर्म भी है। बचपन में मैं भी धर्म का अर्थ रिलीजन ही समझता था और यही स्कूल में पढ़ाया भी गया था। मगर मैं अपने पिताजी को अक्सर कहते हुए सुनता था—"जब से रिलीजन का अर्थ धर्म कर दिया गया तब से एक नया धर्म चल गया है, जिसे लोग हिन्दू धर्म कहते है और वास्तविक धर्म क्षीण होता चला जा रहा है"। मुझे उनकी बात बड़ी अटपटी लगती थी। मैं उनसे पूछता था क्या हिन्दू कोई धर्म नहीं है? तो वे कहते हरगिज़ नहीं। मैं तर्क करता कि फिर स्कूल के दाखिले के फ़ॉर्म में हमारा धर्म हिन्दू क्यों लिखा गया और हम अपने को हिन्दू क्यों कहते हैं ? वे कहते यही तो इस देश का दुर्भाग्य है कि समाज में ग़लतफ़हमियाँ फैलाई जा रही हैं और धर्म क्षीण हो रहा है। उनने बताया कि हमारे किसी भी पुराण, किसी वैदिक संहिता या किसी स्मृति में हिन्दू धर्म तो क्या हिन्दू शब्द तक का उल्लेख नहीं है। मेरे लिये उनकी कही गई बात बहुत बड़ी गुत्थी बन गयी जिसे सुलझाना उस समय मेरे बस की बात नहीं थी। मैंने न तो कोई स्मृति पढ़ी थी और नहीं कोई वैदिक संहिता या पुराण ही पढ़े थी। मैं उनकी बात पर अविश्वास भी नहीं कर सकता था क्यों कि उनके ज्ञान पर मुझे भरोसा था। बड़े–बड़े पण्डित और महात्मा उनके ज्ञान का लोहा मानते थे। भले ही वे हिन्दी की दर्जा चार क्लास तक ही पढ़े थे। फिर भी उनकी बातों में दम होता था। बहुत से लोग उनसे चर्चा करने आते थे। मेरी बुद्धि सोचती कि इस समस्या को सुलझाना तो बहुत जरूरी है। अन्यथा सब लोग धर्म भ्रष्ट हो जाँयगें और समाज नष्ट हो जायगा। मैं बड़ा होता गया और इस समस्या को लगभग भूल सा गया। मग़र जब में आठवीं कक्षा में आया तो सामान्य विज्ञान की पुस्तक में पढ़ा कि प्रत्येक पदार्थ के कुछ गुण और धर्म होते हैं। उन गुण और धर्मों से ही उस पदार्थ की पहचान होती है। पदार्थ किसी भी रूप में परिवर्तित क्यों न हो जाय, उसके गुण और धर्म नष्ट नहीं होते। यहाँ धर्म शब्द को पढ़ कर मेरी भूली बिसरी समस्या फिर लौट आयी। मैं पशोपेश में पड़ गया कि जब किसी भी स्थिति में पदार्थ के गुण धर्म नष्ट नहीं होते तो मुसलमान के हाथ की रोटी खा कर हिन्दू का धर्म कैसे नष्ट हो जाता है या मूर्ति पूजा करके किसी मुसलमान का धर्म कैसे कुफ्र हो जाता है। जरूर कुछ गड़बड़ है। या तो विज्ञान की पुस्तक में गलत लिखा है या हमारी

धर्म सम्बन्धी अवधारणा ग़लत है। मैंने वहाँ धर्म के लिये अंग्रेजी शब्द देखा तो वहाँ रिलीजन नहीं था वहाँ धर्म के लिये जो शब्द मिला वह 'प्रौपर्टीज़' था। मैं फिर हैरान हो गया कि धर्म के माने प्रौपर्टीज़ है या रिलीजन ? मुझे लगा कोई बड़ा घपला है। जिसे मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। आसान सा एक समाधान दिमाग़ में आया कि विज्ञान में धर्म का अर्थ प्रपर्टीज़ होगा और समाज में रिलीजन। और मन उस समय शान्त हो गया।

धीरे–धीरे मैं और बड़ा होता गया। पिताजी ने मुझे लघुसिद्धान्त कौमुदी पढ़ाई। इण्टरमीडिएट में फ़ेल होने पर मैंने साइंस छोड़ कर आर्ट्स में इण्टर किया। यहाँ भी संस्कृत विषय लिया और यहाँ व्याकरण में शब्द सिद्धि पढ़ाई गई तो पता चला कि धर्म शब्द 'धृ' धारणे (धारण करने के अर्थ में) से बना है। तो ये समझ में आया कि धर्म वो है जो धारण किया जाता है। और जैसे पदार्थ अपने धर्म को धारण किये रहता है उसी तरह मनुष्य अपने धर्म को धारण किये रहता है। अतः यह धारणा और पुष्ट हुई कि पदार्थों के संदर्भ में धर्म प्रौपर्टीज़ है तथा मनुष्य के संदर्भ में वह रिलीजन है। क्योंकि रिलीजन भी मनुष्य के द्वारा धारण किया जाता है। फिर कहीं पढ़ा—'धारणाद्धर्म इत्याहू, तस्माद्धारयते प्रजा'। धारणा और पुष्ट हो गई। बात खत्म हो गई।

जब में बी.ए. में था तो कहीं पढ़ा—' धर्मोरक्षति रक्षितः' जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। फिर समस्या खड़ी हो गई। हम रिलीजन की रक्षा करते हैं या कर सकते हैं किन्तु रिलीजन हमारी रक्षा कैसे करेगा ? तो फिर मन ने समझाया कि धर्म रक्षा करता है का अर्थ है उस धार्मिक समुदाय के लोग रक्षा करेंगें। यहाँ फिर समस्या का समाधान हुआ सा लगा। लेकिन पिताजी की बात अब भी मन के किसी कौने में दुबकी बैठी थी। फिर गर्मी की छुट्टियों में एक–एक कर पुराणों को पढ़ने का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। तो समस्या फिर खड़ी हो गई। पिताजी की बात याद आई कि जिस हिन्दू धर्म की बात की जाती है उस हिन्दू का नाम तो इनमें कहीं नहीं है। फिर ये हिन्दू कहाँ से आया? उन्ही दिनों कहीं यह भी पढ़ा कि इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब थे। तो सबाल उठा कि जब धर्म का कोई प्रवर्तक होता है तो जब तक कोई प्रवर्तक नहीं था तो धर्म कहाँ था? पुराणों के अधार पर ईश्वर स्मरण, पूजा–पाठ आदि को मैं धर्म या रिलीजन समझ रहा था उसका तो कोई प्रवर्तक उन पुराणों में देखने को नहीं मिला। फिर बिना किसी प्रवर्तक के हमारा धर्म जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं कहाँ से आया?

तभी किसी ने बताया कि ये हिन्दू धर्म शब्द गलत है इसके स्थान पर सनातन धर्म शब्द होना चाहिये। बात सही लगी क्यों कि भाषा विज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तकों में पढ़ा था कि हिन्दू शब्द पर्शियन भाषा का है, जिसका अर्थ होता है—हिन्दुस्तान का रहने वाला यानी भारतीय या इण्डियन। सब जानते हैं कि भारतीय या इण्डियन नेशनेलिटी या नागरिकता है, धर्म नहीं। इण्डियन नेशनेलिटी में तो अनेक रिलीज़न हैं, जैसे शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन, वैष्णव या सिख आदि। अतः लगा कि पिताजी जब हिन्दू को धर्म नहीं मानते थे तो वे ठीक थे। पिताजी पर मेरी आस्था और बढ़ गई। लेकिन अब एक नया प्रश्न पैदा हो गया कि यदि हिन्दू धर्म ही नहीं है तो फिर हमारा धर्म क्या है? दिमाग़ के किसी कोने से किसी का बताया हुआ उत्तर मिला कि सनातन धर्म। और किसी ने मुझे बता दिया कि सनातन धर्म माने सबसे प्राचीन धर्म। मुझे लगा कि पिताजी की बात आंशिक सत्य थी। हिन्दू धर्म नहीं है ये सत्य है किन्तु वे धर्म को रिलीजन भी नहीं मानते थे। शायद ये बात उनकी गलत थी। मेरा मन कहता था कि नहीं पिताजी गलत नहीं हो सकते।

अब हिन्दू की समस्या तो सुलझ गई मगर धर्म की समस्या वहीं की वहीं थी कि धर्म रिलीजन है या नहीं? उन दिनों हमारे जिले अलीगढ़ में हिन्दू मुस्लिम दंगे बहुत होते थे। सहपाठियों के साथ धर्म को लेकर बड़ी गर्मागरम बहसें होतीं थीं। मैं भी अपनी समझ के अनुसार उन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेता था। तभी एक कम्युनिस्ट मित्र ने बहस के दौरान मेरा ज्ञान वर्धन किया कि कार्ल मार्क्स के अनुसार सभी धर्म अफ़ीम के नशे जैसे हैं। जो धीरे-धीरे मनुष्य को नष्ट कर रहे हैं। इस बात से एक तरफ़ तो मेरे ज्ञान चक्षु खुल गये और दूसरी ओर मेरा ब्रह्माण्ड हिल गया। मेरी यह धारणा टूट कर बिखरने लगी कि जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। मैं पण्डितों और धर्म-प्रचारकों से भिड़ने लगा। उन में कुछ तो मुझ से नाराज़ हो गये और मुझे नास्तिक कहने लगे। कुछ मुझे तरह-तरह के तर्कों से समझाने की कोशिश करने लगे। लेकिन मेरी समझ में उस समय किसी की बात नहीं आती थी क्यों कि मैं देख रहा था धर्म के नाम पर लोग मर रहे थे। मुझे धर्म रक्षक नहीं, भक्षक लगने लगा। मैं अपने भाषा ज्ञान के आधार पर, मुझे नास्तिक कहने वालों को बताता कि जिस तरह आस्तिक का अर्थ धर्म को मानने वाल नहीं है उसी प्रकार नास्तिक अर्थ धर्म को न मानने वाला भी नहीं है। आस्तिक का अर्थ है जो संभावनाओं को स्वीकारता है, और नास्तिक का

अर्थ है, जो संभावनाओं को नहीं स्वीकारता। आस्तिक शब्द संस्कृत के अस्ति से बना है जिसका अर्थ होता है—है। अर्थात् हम जो जानते हैं उसके आगे भी कुछ है या हो सकता है, यह मानने वाला आस्तिक है और जो हमारी जानकारी के आगे भी कुछ है, इस बात को नहीं मानता वह नास्तिक है। इसमें धर्म कहाँ से आ गया? जो मानता है 'सितारों के आगे जहाँ और भी हैं', वही आस्तिक है। आप अपने धर्म से आगे देखिये तो पाएँगें कि धर्म के आगे और बहुत कुछ है। मैं उस और बहुत कुछ को देखता हूँ, मैं आस्तिक हूँ। आप नहीं देखते आप नास्तिक हैं।

जो भी हो इन ज्वलन्त तर्कणाओं ने मेरे भीतर का समुद्र मंथन फिर से प्रारम्भ करा दिया कि आखिर धर्म क्या है? क्या रिलीजन या मज़हब को धर्म कह सकते हैं। मुझे लगता कि रिलीजन या मजहब तो शासकों की फूट डालो और शासन करो की नीति का एक अस्त्र है। मुझे मालूम था कि —"मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना। हिन्दी हैं हम वतन हैं, हिन्दोस्ताँ हमारा" कहने वाले मशहूर शायर इक़बाल भी बँटवारे के बाद अपना हिन्दोस्ताँ छोड़ कर पाकिस्तान तशरीफ़ ले गये थे। मेरा मन कहता हमार धर्म ऐसा नहीं हो सकता। मुझे लगता कि धर्म कोई और चीज़ है और रिलीजन या मज़हब कोई और चीज़। धर्म शब्द हमारी भाषा का है शायद इसलिये मेरी उस पर ममता थी, जो मैं उसे रिलीजन या मज़हब मानना नहीं चाहता था। फिर ऐसा न मानने से पिताजी की इस बात की रक्षा भी होती लगती थी कि धर्म का अर्थ रिलीजन या मज़हब नहीं है। इसलिये मैं ये मानना चाहता था कि धर्म का अर्थ मज़हब या रिलीजन नहीं है। संस्कृत और हिन्दी में रिलीज़न के लिये दूसरे दो दो शब्द मिले सम्प्रदाय और पंथ। ये अनुवाद मुझे सही लगे। क्यों कि रिलीज़न, सम्प्रदाय या पंथ एक विश्वास, एक आस्था या एक मान्यता होती है। प्रत्येक रिलीज़न या सम्प्रदाय एक ईश्वर, एक पुस्तक तथा एक पूजा पद्धति में विश्वास या आस्था रखता है। मुस्लिम, ईसाई, सिख आदि सभी सम्प्रदायों में ये बात देखी जा सकती है। किन्तु तथाकथित हिन्दू मज़हब या रिलीज़न में ऐसा नहीं है। वहाँ अनेक ईश्वर, अनेक देवता, अनेक ग्रंथ और बहुत सी पूजा पद्धतियाँ हैं। फिर हिन्दू रिलीज़न कैसे हो सकता है। निश्चय ही हिन्दू कोई रिलीज़न या मज़हब नहीं है और न ही हिन्दू कोई धर्म है। क्यों कि वह किसी भी मनुष्य की प्रौपर्टी नहीं है। अब मैं अपने अन्दर स्पष्ट था कि हिन्दू कोई धर्म नहीं है, हिन्दू कोई रिलीज़न, मज़हब या सम्प्रदाय भी नहीं है। हिन्दू एक नैशनेलिटी

(नागरिकता) है, भारतीय नागरिकता या इण्डियन नेशनैलिटी। एक ही राष्ट्र के विभिन्न नागरिक विभिन्न पंथों में आस्था रख सकते हैं या एक साथ बहुत से पंथों में भी। तथा कथित हिन्दू धर्म शैव, शाक्त, वैष्णव आदि विभिन्न पंथों की खिचड़ी है। मेरी बुद्धि यह भी जान चुकी थी कि धर्म का अर्थ रिलीज़न नहीं अपितु प्रौपर्टीज़ है। गांधी जी की हत्या के उपरान्त हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर महात्मा गांधी की हत्या का आरोप लगाने के पीछे कांग्रेस का जो भी राजनैतिक स्वार्थ रहा हो। कांग्रेस ने इन दोनों को मुस्लिम विरोधी और हिन्दूवादी कह कर हिन्दू को एक धर्म के रूप में प्रचारित किया था। मेरी धारणा है कि तभी से भारत वर्ष में हिन्दू को नैशनेलिटी के स्थान पर रिलीज़न की मान्यता प्राप्त हो गई। यह आश्चर्य की बात है कि जो प्रो. हेडगेवार और गुरु गोलवलकर हिन्दू को रिलीजन नहीं राष्ट्रीयता मानते थे तथा धर्म को भी रिलीजन से भिन्न मानते थे, उनके वर्तमान अनुयायी आजकल हिन्दू को धर्म और धर्म को रिलीजन मानने लगे हैं।

अब तक मेरी चेतना ने भाषा की समझ के साथ–साथ बहुत से शब्दों के मूल अर्थ जान लिये थे। मेरी समझ में जिस सनातन शब्द का अर्थ, सामान्य जनों से सुनी हुई बातों के आधार पर बहुत प्राचीन था। उसका अर्थ अब मेरे सामने स्पष्ट है––– सन = तपस्या, आतन = आया हुआ या निकला हुआ। तपस्या से निकला हुआ या तपस्या अर्थात् भारी मनन–चिन्तन के परिणाम स्वरूप प्राप्त। अब मैं पूरी तरह स्पष्ट हूँ कि धर्म का अर्थ प्रौपर्टीज़ ही है। सनातन धर्म का अर्थ है मनुष्य मात्र में समान रूप से पाई जाने वाली प्रौपर्टीज़ जो भारतीय ऋषियों के द्वारा भारी मनन–चिन्तन के बाद निकाली गईं या जानी गईं। मनुष्य मात्र की ये प्रौपर्टीज़ प्रत्येक परिस्थिति में प्रत्येक मनुष्य में समान रूप से पाई जाती हैं। जिस प्रकार ताप अग्नि का धर्म (प्रौपर्टी) है उसी प्रकार मनुष्य के भी कुछ धर्म हैं। जिस प्रकार ताप को अग्नि से पृथक् नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मनुष्य के धर्म को भी मनुष्य से अलग नहीं किया जा सकता। जैसे ताप के नष्ट होने के साथ ही साथ अग्नि नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार धर्म के नष्ट होते ही मनुष्य नष्ट हो जायगा। इसीलिये कहा गया "धर्मोरक्षति रक्षितः"।

अब प्रश्न है कि वह धर्म वस्तुतः क्या है जिसे मनुष्य मात्र धारण किये हुए है ? मैं सोचता हूँ प्रत्येक मनुष्य शरीर धारण किये हुए है। इसलिये शरीर मनुष्य मात्र का धर्म है। बिना शरीर के मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शरीर है तो मनुष्य है। मनुष्य है तो शरीर

है। धर्म और धर्मी को अलग नहीं किया जा सकता क्यों कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं हो सकता। अतः शरीर ही धर्म है। भारतीय दर्शनों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य तीन प्रकार के शरीर धारण किये हुए है— १– कारण शरीर या लिङ्ग शरीर, २– सूक्ष्म शरीर, ३– स्थूल शरीर। इनमें चित्त और अहंकार ही कारण शरीर है। मन और बुद्धि ही सूक्ष्म शरीर है और पंच तत्वों से निर्मित स्थूल शरीर तो सर्वदृश्य है। ध्यान रहे इनमें क्रमशः एक से एक स्थूल है। प्रत्येक स्थूल को उससे जो सूक्ष्म है, वह चलाता है। अतः चित्त और अहंकार, जो सर्वाधिक सूक्ष्म हैं, दोनों (सूक्ष्म और स्थूल शरीर) की गति केमूल कारण होने से कारण शरीर कहे जाते हैं। चूंकि मन और बुद्धि अदृश्य हैं और पंचभौतिक शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म हैं अस्तु सूक्ष्म शरीर कहे जाते हैं। वस्तुतः ये तीन शरीर ही मनुष्य मात्र के धर्म हैं जिन्हैं वह धारण करता है। यही मानव की प्रौपर्टीज़ हैं। इसीलिये संस्कृत में कहावत है—'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' और हिन्दी में भी— 'काया राखै धरम है'। इनकी रक्षा करने से ही मनुष्य की रक्षा होती है। इनके नष्ट होते ही मनुष्य की सत्ता नष्ट हो जाती है। इसलिये मनुष्य को प्रयत्न पूर्वक इनकी रक्षा करनी चाहिये। किन्तु खेद का विषय है कि आजकल स्थूल शरीर की रक्षा करने के लिये सभी समाज प्रयत्न शील हैं। किन्तु शेष दोनों शरीरों (कारण और सूक्ष्म शरीर) की रक्षा करने के लिये वैसे प्रयत्न नहीं दिखाई दे रहे। जैसे स्थूल शरीर की रक्षा का भार समाज में डॉक्टर और वैद्य उठाते हैं। उसी प्रकार शेष दोनों शरीरों की रक्षा के लिये सभी समाजों में दार्शनिक, वैज्ञानिक, पण्डित[१] और संत–महात्मा प्रवृत्त रहते हैं। इसी रक्षा के क्रम में समय–समय पर पण्डित और साधु–संत समाज में मनुष्य की मन और बुद्धि को शुद्ध एवं पुष्ट रखने के लिये सत्ससंग आदि के द्वारा दिशा–निर्देश करते रहते हैं। दार्शनिक और पण्डित विधि–निषेध और नीतियों का निर्धारण करते रहते हैं। भारत में विभिन्न स्मृतियाँ अलग–अलग कालों में लिखी गईं और सभी में अन्तर भी है। इससे स्पष्ट है कि देश, काल और परिस्थियों के अनुरूप इनमें परिवर्तन होता रहा है। एक ही बायलौज हमेशा नहीं चलता रह सकता। समय–समय पर उसमें संशोधन–परिवर्धन होते रहते हैं और होते रहे हैं। जिस समाज में इन तीनों शरीरों की रक्षा का प्रबन्ध नहीं होता अथवा इनकी रक्षा की व्यवस्था शिथिल होती है वही समाज नष्ट हो जाता है या पतनोन्मुख हो जाता है। इसी धर्म–रक्षा की तकनीक विकसित करने

१. पण्डा शब्द का अर्थ सदसद् विवेकनी बुद्धि है और पण्डित का अर्थ है जिसके पास यह बुद्धि हो, वह व्यक्ति। पण्डित का अर्थ कोई पूजा पाठ कराने वाला व्यक्ति नहीं है।

के क्रम में विभिन्न समाजों में ज्योतिष, आयुर्वेद, चिकित्सा (मैडीकल साइंस) आदि ज्ञान की दिशाओं के साथ–साथ अनेक आस्था–केन्द्रों का और विभिन्न पूजा–पद्धतियों अर्थात् संप्रदायों (रिलीजंस) का भी विकास हुआ। रिलीजन धर्म की रक्षा के लिये होते हैं, रिलीजन धर्म नहीं हैं। किन्तु यह देख कर बड़ा दुःख होता है कि एक लम्बे समय से इन का राजनीति करण होने लगा है इतना ही नहीं इस उपभोक्ता संस्कृति के युग में धनार्जन के साथ अन्य स्वार्थों के लिये भी इनका दुरुपयोग होने लगा है। फलतः नित नए संप्रदाय और पंथ खड़े हो रहे हैं। यहाँ तक कि चिकित्सा आदि का भी व्यवसायीकरण होने लगा है। यही हाल शिक्षा का भी है। मनुष्य के मन और बुद्धि को स्वस्थ रखने की बजाय उसे बंधक बना कर अस्वस्थ किया जा रहा है।

हमारे भारत वर्ष में धर्म, विशेषकर कारण और सूक्ष्म शरीर को समझने और समझाने की दिशा में अनगिनत कार्य हुए हैं। हमारे यहाँ धर्म के संबंध में जो कहा गया है—

धृतिक्षमादमोस्तेयंशौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥[२]

वह धर्म नहीं बल्कि तीनों में से एक धर्म, कारण शरीर (अहंकार और चित्त) के लक्षण या पहचान हैं जिनसे चित्त का पता लगता है। यही मनुष्य के गुण भी हैं। क्योंकि धर्म के साथ कुछ गुण भी रहते हैं जिनसे धर्म और धर्मी की पहचान होती है। १– धृति (धैर्य या पेशैंस), २– क्षमा (माफ़ करना या इग्नोर करना), ३– दम (रोकना, दमन करना, होल्ड ऑन), ४– आस्तेय (कुछ न छिपाना यानी बाहर–भीतर से एक से रहना), ५– शौच {पवित्रता, सफ़ाई (बाहर की भी और भीतर की भी)}, ६– इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों पर नियन्त्रण), ७– धी (समझ या कौग्नीजैंस), ८– विद्या (जानकारी, नौलेज़), ९– सत्य (तथ्यों में से निष्कर्ष निकालने की प्रवृत्ति) और १०– अक्रोध (क्रोध न करना)। ये प्रथम धर्म (अहंकार और चित्त) के लक्षण हैं, कोई नीति या ऐथिक्स नहीं हैं या ऊपर से किसी के द्वारा थोपे गये नियम नहीं हैं। ये सभी मनुष्यों में थोड़े या बहुत होते ही हैं। हमारे ऋषियों ने बड़े तप के बाद इन्हें जाना है। यही सनातन हैं। जैसे सभी पदार्थों के कुछ गुण और धर्म होते हैं उसी प्रकार मानव के ये दश गुण

---

२. मनुस्मृति : ६/९२।

और तीन धर्म होते हैं। गुणों के विलोम दोष होते हैं यानी अधैर्य, क्षमा हीनता आदि दोष हैं।

यदि यहाँ संस्कृति की बात न की तो हम समझते हैं कि यह धर्म चर्चा अधूरी ही रह जायगी। यद्यपि धर्म और संस्कृति विद्वानों की दृष्टि में अलग–अलग बातें हैं तथापि तथाकथित पण्डितों की कृपा से आम आदमी की दृष्टि में धर्म और रिलीजन के साथ–साथ संस्कृति भी गड्डमड्ड हो गई है। धर्म और रिलीजन की ही तरह संस्कृति और कल्चर भी मुझे परेशान करते रहे हैं। मेरी समझ में संस्कृति और कल्चर दोनों ही अलग–अलग अर्थ बोध देते हैं। संस्कृति 'संस्कार' से और कल्चर 'कल्ट' से बना है। संस्कार शब्द ज्योतिष, गणित और आयुर्वेद आदि में संशोधन (करैक्शन) के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। धर्म के साथ मनुष्य में रहने वाले गुणों में समय–समय पर जो संशोधन होते रहे हैं, वे संस्कार कहे जाते हैं। अतः संस्कृति मनुष्य के संस्कारों की शृंखला का नाम है। जो सदैव सभ्यता में परिलक्षित होती है। इस बात को काव्यात्मक भाषा में कहें तो कह सकते हैं कि संस्कृति किसी समाज के व्यक्तियों की आत्मा है तो सभ्यता उनका शरीर। संस्कृति और सभ्यता में वही अन्तर है जो अर्थ और शब्द में होता है। सभ्यता में संस्कृति अभिव्यक्त होती है। संस्कृति शब्द संस्कार से बना है। भूख और तृप्ति, सुख–दुःख, सुन्दर–असुन्दर, अच्छा–बुरा, पाप–पुण्य, अपना–पराया, भेद–अभेद आदि कुछ ऐसे संस्कार हैं[३] जो मानव–चित्त में अनेक जीवन यात्राओं के बाद एकत्रित हुए हैं। ये सभी संस्कार जैसा कि स्पष्ट है जोड़ों (युग्म) में होते हैं। वास्तव में ये ही चित्त की विभिन्न वृत्तियाँ हैं जिन्हें बाह्य संसार के संसर्ग से मनुष्य अनुभव करता है। पूरे विश्व में ये लगभग समान हैं। इनमें स्थान, काल और व्यक्ति भेद से कुछ कम या बढ़ हो सकती है। कुछ हजार सालों से जबसे संप्रदायों का विकास हुआ है मनुष्य ने अपनी अहम्मन्यता के कारण इन युग्मों को तोड़ने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया है। अतः इनमें से भूख, असुन्दर, बुरा, पाप आदि कुछ विलोम संस्कारों का निषेध करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। फलतः कुछ समझदार लोग मनुष्य को एक ख़ास ढाँचे में ढालने की कवायद में जुट गये। सबके साँचे अलग–अलग थे और हैं। यही कारण है कि अनेक सम्प्रदायों की ही तरह अलग–अलग विचारधाराओं के समूह (कल्चर) बनने लगे। मनुष्य के बुद्धि और मन को अलग–अलग उद्देश्यों के लिये अलग–अलग तरीकों से कल्टीवेट किया जाने लगा। जिसे कल्चर या रिलीजन का नाम मिला। अतः

३– संस्कार इतने ही नहीं हैं। इनकी संख्या बहुत है। ये वे प्रोग्राम्स हैं जो चित्त रूपी कम्प्यूटर में भरे पड़े हैं। इन्ही की सहायता से मनुष्य दुनिया के तमाशे को रीड कर पाता है और हमें दिखाता है।

अनेक प्रकार के रिलीजन और कल्चर विकसित हो गए। वस्तुतः कल्चर और रिलीजन मनुष्य के मन और बुद्धि में किये जाने वाले संशोधन (करैक्शन) हैं जबकि धर्म और संस्कृति मनुष्य के चित्त और अहंकार के संस्कार (करैक्शन) हैं।

वस्तुतः मानव संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में एक ही है। स्थान, काल और व्यक्ति भेद से इनमें परिमाणात्मक अन्तर हो सकता है, गुणात्मक नहीं। इनकी अभिव्यक्ति भी इन तीन कारणों से भिन्न–भिन्न रूपों में होती है। जिन्हें हम सभ्यताएँ कहते हैं। जैसे भूख एक संस्कार है जो संस्कृति का ही एक अंग है। इसे तृप्त करने के लिये विभिन्न स्थानों, कालों एवं व्यक्तियों के तरीके अलग–अलग होते हैं जो धीरे धीरे परंपरा बन जाते हैं। जैसे भूख को शान्त करने के लिये चीनी कुछ अलग तरह के पदार्थ तैयार करते हैं और इटली के लोग कुछ अलग और भारत के लोग कुछ अलग इसी प्रकार विभिन्न देशों और प्रान्तों में भी। जैसे खाना बनाने के तरीके अलग–अलग होते हैं वैसे ही खाना खाने के तरीके भी अलग–अलग होते हैं। ये ही विभिन्न सभ्यताएँ हैं।

भारत में अनेक सांस्कृतिक परंपराएँ हैं जिन्हें सभ्यता और शिष्टाचार भी कहते हैं जैसे—होली, दिवाली, रक्षाबंधन, दशहरा, विवाह, करवाचौथ आदि। होली, दिवाली और लोहड़ी वस्तुतः नई फ़सल के आने पर सामूहिक रूप से खुशी को व्यक्त करने के पर्व या त्यौहार हैं। किन्तु कालान्तर में होली और दीपावली को संप्रदायिक पूजा पद्धतियों (रिलीजन) से जोड़ दिया गया। हो सकता है इसके मूल में एक अच्छी परंपरा को बनाए रखने की भावना रही हो। किन्तु इसके सुपरिणाम नहीं हुए। जिस प्रकार भारत में जिस क्षेत्र का भी राष्ट्रीय करण हुआ उसी क्षेत्र में गुणवत्ता का ह्रास हो गया। उसी प्रकार सांस्कृतिक परंपराओं का सांप्रदायीकरण होते ही उनके भीतर की खुशी और मस्ती तथा सहजता ग़ायब हो गयी और रह गया केवल एक रिचुअल। अब दिवाली पर आम आदमी में नए अन्न के आगमन की खुशी और मस्ती की सहजता के स्थान पर लक्ष्मी को खुश करने की होड़ और उस होड़ में पिसना तथा लक्ष्मी नाराज़ न हो जाँय इस भय से पूजा करना रह गया है। अब लक्ष्मी जी को खुश करने के लिये या उनके कोप से बचने के लिये एक पुजारी का होना आवश्यक हो गया। ताकि पूजा पद्धति में कोई गड़बड़ न हो जाय। अब दिवाली पुजारी जी के लिये व्यापार और आम आदमी के लिये एक बोझ या रिचुअल मात्र है, जिससे वह लक्ष्मी को खुश करके धनवान हो

जायगा। मस्ती और खुशी की जगह एक भ्रम ने ले ली कि पूजा करके धनवान बना जा सकता है। मैं पुरोहितों, पुजारियों और ज्योतिषियों के पास ऐसे लोगों की भीड़ देखता हूँ जो उन से कोई मन्त्र या पूजा–पाठ इसलिये जानना चाहते हैं कि वे शीघ्र धनवान बन जाँय। वे ये नहीं सोचते कि पूजा पाठ से यदि धनवान हो सकते होते तो फिर व्यापार और नौकरी की क्या आवश्यकता है । अब बस एक ही उद्योग रह गया है पूजा–पाठक उद्योग । पुजारियों, ज्योतिषियों ने मनुष्य के सूक्ष्म शरीर (मन और बुद्धि) को बंधक बना लिया है। इससे किस का लाभ हो रहा है। मनुष्य का तो धर्म नष्ट हो रहा है। किन्तु बंधक बने हुए मन–मस्तिष्क वाले ये लोग समझ रहे हैं कि वे बड़ा भारी धार्मिक और सांस्कृतिक कार्य करके पुण्य कमा रहे हैं। धर्म ये नहीं है, ये संस्कृति भी नहीं है। इन मठाधीशों के कारण सभी सांस्कृतिक पर्व और त्यौहार तथाकथित धार्मिक (सांप्रदायिक) हो गये हैं। अब उनका निर्णय भी वही करेंगें कि वे पर्व और त्यौहार कब और कैसे मनाए जाँयें। उसके लिये अपनी महत्ता प्रतिपादित करने वाले तथाकथित धर्मशास्त्रों की रचना कर दी गई। मजे की बात है उनमें एक रूपता का सर्वथा अभाव है। क्यों कि उनका उद्देश्य मनुष्य के धर्म को बचाना नहीं अपितु उसका दोहन करने के लिये उसके धर्म (मन, बुद्धि, चित्त और शरीर) को बंधक बनाना है। तथाकथित हिन्दुओं में देखें हर पर्व, त्यौहार और उत्सव दो हो गये हैं और जिनमें ऐसा नहीं हुआ है उनमें अपना महत्त्व प्रतिपादित करने के लिये उन्हैं दो फाड़ किया जा रहा है। इन धर्मध्वजों की कृपा से प्रदर्शन और पाखण्ड तो बढ़े हैं किन्तु पर्वों त्यौहारों और पूजा–पाठ के भीतर की आत्मा, उनके पीछे की भावना मर गई है या मरती जा रही है। मुझे अच्छी तरह याद है तथाकथित पण्डितों की अहम्मन्यता के कारण सम्वत् २०३९ तदनुसार सन् १९८२ में आधे भारत में दिवाली अक्टूबर में तथा आधे भारत में नवम्बर में मनाई गई थी और इस कृत्य में बनारस के एक काँग्रेसी राजनेता की भूमिका जागरूक लोगों से छिपी नहीं थी।

जो भी हो आज आवश्यकता है इन शब्दों के सही अर्थों को समझने की। सही अर्थों को समझने के बाद ही किसी भी प्रकार के वैचारिक घालमेल से बचा जा सकता है। अन्यथा वैचारिक घालमेल भविष्य में मनुष्य को एक ऐसी वैचारिक अराजकता में ले जायगा जिसमें विचारों की आपसी मारकाट मनुष्य की बुद्धि को कुण्ठित अस्तु नष्ट करके उसे पागल बना देगी।

भारतीय धर्म साधना में संत कवियों का स्थान

डा० विद्या रानी

सन्त शब्द का प्रयोग साधारणतः किसी भी पवित्रात्मा और सदाचारी पुरुष के लिए किया जाता है। कभी–कभी यह साधु एवं महात्मा शब्दों का पर्याय समझ लिया जाता है, किन्तु सन्त वह है जो आत्मोन्नति सहित परमात्मा के मिलन भाव को साध्य मानकर लोकमंगल की कामना करता है। सन्त शब्द का सत् शब्द का बहुवचनान्त रूप है और श्रीमन्त के अनुकरण पर तत्व द्रष्टा लोकोपकारी महात्माओं के लिए प्रयुक्त होने लगा है। 'सन्त' शब्द 'शान्त' से विकसित हुआ है और इसका अर्थ निवृत्तिमार्गी अथवा वैरागी है।

भारतीय धर्म साधना में सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से संत कवियों का विशिष्ट स्थान है। संत कवियों ने शास्त्रीय रुढ़ियों और परम्पराओं को नकारते हुए वर्ण जाति और धर्म की विभाजक रेखाओं को मिटाने का ऐतिहासिक प्रयास किया। पीड़ित, शोषित और भक्ति के अधिकार से वंचित जन समाज को भक्ति की मुख्य धारा में लाते हुए संत कवियों ने जन–जागरण की जो चेतना समाज में फैलाई, वह अभूतपूर्व थी। उन्होंने समाज की जड़ता को तोड़कर नई ऊर्जा प्रदान की। सन्तों ने प्रचार भावना के कारण ही लोकभाषा को अपनाया और उसमें भी संभवतः सरल रूप को ग्रहण किया है। उनका उद्देश्य लोकमत प्रस्तुत करना था। उनका उद्देश्य साहित्य के माध्यम से 'कान्तासम्मित उपदेश' देना था। उनका ध्यान दार्शनिक तत्त्वों को सरल और प्रेषणीय बनाने की ओर रहा है। सहज भावों की सरल अभिव्यक्ति को काव्य का रूप देकर इन सन्तों ने धर्म की गरिमा को बढ़ाया है।

मानवता का कल्याण ही इनकी रचना का प्रेरणा स्रोत है। सन्तों में आध्यात्मिक अनुभूतियों के चित्रण के साथ जन–जीवन को वाणी दी है। सन्त साहित्य समाज के निम्न अथवा सामान्य वर्ग के कवियों द्वारा रचित है। ये लोग शास्त्र के स्थान पर आत्मानुभव को प्रधानता देते थे और तत्त्व–बोध को जटिल न बनाकर उसकी सरल अभिव्यक्ति करते थे। इस प्रकार सन्त भारतीय धर्म साधना के वे प्रकाश स्तम्भ हैं, जो अन्धकार में भटकते हुए मानव समाज को शताब्दियों से अद्यावधि प्रकाश देते आ रहे हैं और भविष्य में भी देते रहेंगे। साहित्यिक दृष्टि से संत कवियों ने जनभाषा में सरल सुबोध शैली में शक्ति, नीति और सामाजिक जन–जागरण के साहित्य की रचना की, जो अपनी सरलता जीवन दर्शन की गम्भीरता और तत्त्वबोध के कारण अत्यन्त प्रभावशाली है।

सन्तों की वाणी नारियल के समान ऊपर से कठोर दिखाई देने पर भी अपने भीतर मधुरता और सरसता लिए हुए है। संतों की इस पीयूषवर्षी वाणी से राजा–रंक, स्त्री–पुरुष, शिक्षित–अशिक्षित, ज्ञानी–भक्त तथा हिन्दू–मुसलमान सभी सामान्य रूप से प्रभावित हो रहे हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने आज के बुद्धिजीवियों की भावनाओं को वाणी देते हुए ठीक ही इनसंतों को 'मानवता का उद्धारक एवं संरक्षक'

कहा है। सन्त साहित्य का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। संतों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। उनका मानस स्वच्छ और उदार था। इसलिए उनका साहित्य जन–भावनाओं की सहज प्रवृत्तियों, विकृतियों और विडम्बनाओं का विशाल शब्द चित्र है। उन्होंने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है। संत साहित्य आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना संस्थापित करने में सहायक है। यह जीवन शक्ति का अजस्र स्रोत है।

भारतीय धर्म साधना के इतिहास में सन्त कवियों का स्थान सर्वोपरि है। इन कवियों ने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जन–जीवन का नेतृत्व किया। सन्त कवियों ने देशी–विदेशी धार्मिक सिद्धान्तों में समन्वय करते हुए भी उसका मूल रूप हिन्दू धर्म के अनुरूप ही रखा। सन्त कवियों ने हिन्दू धर्म की बाह्य रुढ़ियों का खण्डन करते समय प्रखर उत्साह अवश्य दिखाया है, किन्तु उनका मण्डनात्मक पक्ष हिन्दू धर्म और हिन्दू दर्शन के तत्त्वों से ही सम्पृक्त है।

सांस्कृतिक दृष्टि से सन्त कवियों में भारतीय धर्म और संस्कृति को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। वास्तव में संत कवि तत्त्वदर्शी थे, सिद्धान्तदर्शी नहीं। वाणी की ओजस्विता, प्रखरता और निर्भीकता ने सन्त कवियों को एक विशिष्ट पहचान दी। संत कवियों ने प्रेम को जीवन का सर्वोपरि तत्व मानते हुए उसके प्रति अत्यन्त उदात्त दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। उनका प्रेम कुंठारहित स्वछन्द प्रेम है। संत कवियों ने जीवन के चिरंतन सत्य को सरल–सुबोध वाणी में प्रस्तुत कर धर्म–साधना में स्वानुभूति, प्रेम और आचरण की पवित्रता पर बल दिया है। अन्त में, मैं यही कहूँगी कि भारतीय धर्म साधना में संत कवियों का विशिष्ट स्थान है।

देरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय
ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश–791101
मो0 9436052135

दर्द की गुंजलक से घिरा 'तीसरी आजादी का सपना'

(वेदप्रकाश अमिताभ के व्यंग्य का संदर्भ)

डा० प्रभाकर शर्मा

व्यंग्य आधुनिक साहित्य की देन है। मानवीय जीवन के लिए आधुनिकता अपने साथ कुछ सुखद स्थितियाँ तो कुछ दंश भी बचा न सकी। कुछ अर्थों में आधुनिकता परम्परा विरोधी है। परम्परा में जो चीजें और स्थितियाँ मान्य हैं वे अमान्य हुईं। सत्य का मूल्य पुरानेपन की पहचान हो गया। आधुनिक जीवन में झूठ को मूल्य के रूप में तो स्वीकारा न जा सका परन्तु सत्य के मूल्य की रक्षा भी बेमानी हो गयी। इस दुहरेपन ने व्यक्तित्व को खण्डित किया। हम झूठ को अपने साथ पसंद न करें परन्तु झूठ से परहेज कहाँ कर पाते हैं। इन स्थितियों ने जीवन को विसंगति और विडम्बनापूर्ण बनाया। जाहिर है कि व्यंग्य का जन्म विडम्बना से हुआ। अंग्रेजी के ह्यूमर, सेटायर और विट का त्रिक आधुनिक साहित्य की भाषा का विशेष गुण बना। विडम्बना के लिए अंग्रेजी में 'आयरनी' शब्द है, जो ग्रीक शब्द 'ईरोनिया' से बना है। आधुनिक जीवन की विसंगति और विडम्बना की अभिव्यक्ति ने व्यंग्य को साहित्य में ऊँचा दर्जा दिलाया।

'तीसरी आजादी का सपना' डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ की प्रथम व्यंग्य रचना है। आलोचना से निरन्तर का सम्बन्ध रखते हुए भी वे कहानी, कविता, निबन्ध, संस्मरण, साक्षात्कार और व्यंग्य लिखते रहे हैं। रचना का शीर्षक नया और आकर्षक ही नहीं व्यंग्य कृति के नाम की सार्थकता भी कहता है। तीसरी आजादी स्वयं में एक व्यंग्य गर्भित मुहावरा भी है। यह अलग बात है कि शीर्षक मोह में एक अपेक्षाकृत कमदमदार व्यंग्य का चयन हुआ है।

इस कृति की ताकत है आम आदमी – जो नौकर है, मजदूर है, बेरोजगार है, शिक्षक–पत्रकार–क्लर्क है–की रोजमर्रा की जिंदगी। उस आदमी की बदसूरत हो रही शक्ल पर फोकस करना लेखक का उद्देश्य है। आज तक, स्टार और जी टी0वी0 के खोजी कैमरामैनों और पत्रकारों की तरह लेखक की संवेदनशील दृष्टि वहाँ–वहाँ पहुँचती है जहाँ अम्रमन डिग्री कालेज शिक्षक की की मारामारी सहता है।

मुझे स्मरण आता है जॉर्ज बनार्ड शॉ का जिन्होंने नये रचनाकारों और समीक्षकों को सलाह में लिखा – ''सबसे पहले आप अपने तथ्यों को लिखें। यही सभी शैलियों की नींव है। शैली ही आपकी अभिव्यक्ति है और यथार्थ सत्य के बिना अभिव्यक्ति सम्भव भी नहीं।'' (नये समीक्षक को सलाह, अनु0 डॉ0 सरोज सिन्हा, पृ0 21)

बनार्ड शॉ की सलाह डॉ0 अमिताभ को इसलिए गैर जरूरी है कि एक प्रौढ़ समीक्षक की लेखनी असरदार तरीके से सर्जना में कार्य कर रही है।

रोजमर्रा की जरूरत : किल्लत और दिक्कत

'नींद का इंजेक्शन' स्वास्थ्य विभाग की चिरपरिचित संवेदनहीन शैली का बयान है। सरकारी अस्पतालों की नारकीय स्थिति का जाना पहचाना चेहरा उजागर करते व्यंग्यकार अपने सरोकार से जुड़ता है ये सारी चीजें राजनीति की देन है। सरकारों के पास एक असरदार नींद का इंजेक्शन है जो कभी गरीबी हटाओ, कभी आर्थिक सुधार, कभी मंदिर–मस्जिद विवाद के नाम से बाजारों में बिकता है। मरीज के तीमारदारों की तरह लेखक गैर जरूरी सलाह भी पाठकों तक पहुँचाता है कि इंजेक्शन ज्यादा लगने से मरीज इम्यून हो जाता है। गैस रिफिलिंग अधिकांश लोगों को भले ही अतीत का दर्द हो फिर भी बड़ा तबका आज भी इससे जूझता ही है,

ब्लैक भी देता है। इस संकट से गुजरे लोगों को 'लला तब आइये खेलन होरी' व्यंग्य अतीत की दुखन की कुरेदन है।

मूल्यबोध बनाम मूल्यहीनता

कचहरी की मूल्यहीनता की सीमा शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्माण, भर्ती, रोजगार आदि महकमों तक फैल चुकी है। 'फार्मूला सड़केश्वर महादेव' मूल्यहीनता पर करारी चोट है। 'जब आदमी कमजोर होता है तो उसके देवता भी कमजोर पड़ जाते हैं। पहले भगवान से भक्त की गति होती थी, अब भक्त से भगवान की नियति निर्धारित होती है।'

साहित्य, कला और संस्कृति की दुर्दशा

साहित्य पारी चालू आहे, एक और मेघदूत, मंत्रों के भस्मासुर, सहज कविता का शास्त्र, हड़बड़ी में नई सदी, नाक कटाने की होड़ आदि व्यंग्य सामाजिक विषमताओं, विद्रूपताओं और असंगतियों पर सोचने को बाध्य करती हैं। जिस आधुनिकता की दौड़ में मनुष्य अंधा होकर दौड़ने को मजबूर है उससे उसके पैरों तले कला, साहित्य और संस्कृति कुचले जायें तो उसकी बला से। 'हड़बड़ी में नई सदी' व्यंग्य एक साथ कई मोर्चों को खोलता है। बाजार, क्रिकेट, आजादी, समाजवाद, लोकतंत्र, राष्ट्रगान, जनतंत्र जैसे अनेक विषयों को एक साथ समेटने के कारण व्यंग्य की धार को कमजोर करता है वैसे ही जैसे कई जगह एक साथ युद्ध के मोर्चे खोलने वाले पराक्रमी की जीत संदिग्ध हो जाती है।

राजनीतिक दुरभिसंधियों का खुलासा

व्यंग्यकार को राजनीति पर लिखने को बहुत मौका रहता है। अमिताभ के कुछ व्यंग्य प्रकट तौर पर और लगभग सभी प्रच्छन्न रूप में राजनीति को कोसते नजर आते हैं। राजनीति का सर्वग्रासी आकार देखकर कोई भी रचना धर्मी दुखित हुए बिना नहीं रहेगा, लेखक भी नहीं रहा। 'एक गिरगिट की आत्महत्या', 'दो बाँके एक बार फिर', 'चाटुकारिता का नया शास्त्र' राजनीतिक लोगों के दुमुँहे पन, जनता की उपेक्षा, कथनी–करनी के अंतर को दिखाते भी हैं और कहते भी हैं। इस विद्रूप को दिखाकर हर आम को लेखक सोचने को और खास को कहकर कोई दूसरा विकल्प तलाशने को उकसाता है।

इस संग्रह के ताकतवर व्यंग्यों के साथ कुछ कमजोर भी हैं। कारुणिक और दुखद प्रसंगों का बयान व्यंग्य नहीं, यदि ऐसा होता तो रामायण का सीता हरण और कैकेयी वरदान प्रसंग भी व्यंग्य के विषय होते। अभाव, गरीबी और रूढ़ियों से घिरा समाज 'तीन बहनों के बहाने' मौत की तरफ तो बढ़ ही रहा है। यह रचना व्यंग्य की शक्ल अख्तियार नहीं कर सकी है। व्यंग्य मीडिया की एक रपट भर है जिसे व्यंग्य का मुखौटा पहना दिया गया है। यह मुखौटा उत्तर प्रदेश आई0ए0एस0 अधिकारी संघ द्वारा तीन भ्रष्टतम अधिकारियों के नाम की घोषणा का है। बड़ा मारक विषय था यह व्यंग्य के लिए। संघ की यह घोषणा ऐसी ही थी जैसे एक जादूगर ने किसी शहर में मुनादी करा दी कि वह अमुक दिन शहर के सारे मुर्दों को जिन्दा कर देगा। सारे शहर में हल्ला हो गया। अखबार की सुर्खियाँ और इश्तहार इस घटना का विषय बने। लोग सोचने लगे कि नामुमकिन तो है, पर खुदानखास्ता ऐसा हो गया कि मुर्दे जी उठे तो बड़ी मुश्किल होगी। दहेज हत्या, सुपारी हत्या, मृतक आश्रित नौकरी हत्या, राजनीतिक हत्या आदि सभी की पोल खुल जायेगी। हत्यारे पहुँचे जादूगर के पास। उससे कहा – भाई ये सब क्या बखेड़ा खड़ा करने जा रहे हो। तुम नहीं जानते इसके परिणामों के। खैर, जादूगर ने ले–देकर सौदेबाजी से निर्णय स्थगित कर दिया। ऐसी जादूगरी की करामात दिखाने वाले उ0प्र0 आइ0ए0एस0 संघ की करतूत पर आधृत है 'तीन बहनों के बहाने' व्यंग्य। देश, समाज और राजनीति को दिशा देने वाले अफसरों की

हालत जब यह है तो 'तीसरी आजादी का सपना' गुंजलक में कैद रहेगा ही। वेदप्रकाश अमिताभ इस गुंजलक को खोलने की कोशिश में साथ हैं।

रचना के शिल्प पर बात किए बगैर चर्चा अधूरी होगी। लेखक को भाषा पर खासा अधिकार है। भाषा की बहुत कारीगरी, पच्चीकारी और नक्काशी लेखक के पास नहीं है। सच कहने को किसी बड़े जुबानी इल्म की जरूरत नहीं होती। कहा भी जाता है – 'ट्रुथ इज़ फिक्शन'। भाषा में मुहावरेदारी, सूक्तियों का सही जगह प्रयोग उसे असरदार बनाता है। कुछ उदाहरण – 'तारीफ का बंदूक या डंडे से नजदीक का रिश्ता है। (पृ0 26) सींक खड़ी कर दी बॉस। (पृ0 47) रिंद के रिंद रहे हाथ से जन्नत न गयी। (पृ0 11) अस्पताल में 'कुल मिलाकर जनतांत्रिक माहौल है। सबकी पूजा, सबके लिए, सबके द्वारा का मंत्र यहाँ लोकप्रिय जान पड़ा। (पृ0 11) जरूरत के अनुसार भाषा में स्थानीयता की रंगत भी दिखती है इससे पठनीयता बढ़ी है।

अन्त में कहना होगा कि व्यंग्य के शीर्ष पर पहुँचे कई मैना–बैनाओं ने जजबात की गहराई से नाता तोड़कर भाषा की पी0सी0 सरकारी जादूगरी तेवर भले ही अपना लिया लेकिन व्यंग्य विधा में सस्ते कवि सम्मेलनों का वायरस पहुँचाने वालों को साहित्य देवता कभी माफ नहीं करेगा।

वेदप्रकाश अमिताभ के व्यंग्यों का कंटेंट किसी खास फॉर्म का मोहताज नहीं है। ये इनकी ताकत है इसके सहारे ये अपनी पठनीयता बनाये रखते हैं। इसके विपरीत बड़े–बड़े व्यंग्यकारों को पठनीयता को कितने भाषायी योगासनों के करतब करने पड़ते हैं। ऐसे व्यंग्यों को पाठक वैसे ही भूल जाया करता है जैसे योगशिविरों की भीड़ योग को कुछ ही दिनों में भूल जाती है।

हिन्दी विभाग
धर्म समाज कॉलेज, अलीगढ़।

(पुस्तक समीक्षा)
मानस–सुगन्ध
(श्री रामचरितमानस पर आधारित औपन्यासिक कृति)

आचार्य रामाधार उपाध्याय
विद्या वाचस्पति, भोपाल

वर्तमान में प्रचलित परम्परा के अनुसार जनमानस तक श्रीरामकथा का संदेश पहुँचाने का जो श्रेयस्कर कार्य श्री रामकथा के सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यास डा0 रामवशिष्ठ जी ने किया है। सुनिश्चित रूप से यह कार्य श्लाघ्य स्तुत्य तथा इस शैली में अद्वितीय है। इसको पढ़कर रसज्ञ जन श्री रामकथा के महमीय बिन्दुओं जो सर्वथा अद्याविध अज्ञात से हैं, वे उनके मानस में सुस्पष्ट होते हुए प्रत्यक्ष होंगे।

आपके सुदीर्घ जीवन की अत्यन्त मंगलकामना के साथ, यह ग्रन्थ जन जन तक पहुँच कर उपयोगी हो, ऐसी भगवान श्री सीतारामजी के चरणों में प्रार्थना करता हूँ।

डा0 गोपाल बाबू शर्मा कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा से सुसम्पन्न रचनाकार हैं। एक व्यंग्यकार के रूप में उनका साहित्यिक प्रदेय महत्त्वपूर्ण है। जीवन और जगत् की प्राण–चेतना के प्रति उनकी वैचारिकता का लोहा मानना पड़ता है। इस अंक में डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा का साक्षात्कार प्रकाशित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

– सम्पादक

भेंटवार्ता : डा० गोपाल बाबू शर्मा के साथ

निश्चल, सासनी गेट, अलीगढ़।

रविवार का दिन। सुबह ग्यारह बजे का वक्त। स्थान 82 आवास विकास कॉलोनी, सासनी गेट, अलीगढ़। पार्क के सामने स्थित मकान। मैं आज स्कूटर के बजाय साइकिल से पहुँचा इस मकान तक। यह मकान मेरे लिए कोई नया नहीं था। साइकिल से उतरकर मैंने गेट खटखटाया, कुछ पलों के इंतजार के बाद अपनी बैठक से जो सज्जन निकलकर आये, वे थे डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा। उन्होंने गेट खोला। मैंने धीरे से पूछा – ''आज तो आप फ्री होंगे।'' वे बोले– ''आओ, अन्दर तो आओ।''

गेट के अन्दर एक छोटा सा सुन्दर बगीचा है। उसे पार कर हम बैठक में पहुँचे। डॉक्टर साहब ने मुझसे बैठने के लिए कहा। मैंने बैग एक तरफ कुर्सी पर रखकर पलंग के नीचे से छोटी चौकी निकाली ओर बैठ गया।

डाक्टर साहब ने पूछा – ''कैसे हाल–चाल हैं?''

मेरे मुँह से निकल पड़ा – ''आज मैं आपका इण्टरव्यू लेना चाहता हूँ।''

''इण्टरव्यू? मेरा? जिस तरह इण्टरव्यू लेना एक कला है, उसी तरह अब इण्टरव्यू देना भी एक कला है, और हमें यह कला नहीं आती। खैर'',

डा0 विश्नाथ शुक्ल, डा0 गोपालदास नीरज, डा0 राकेश गुप्त, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', प्रो0 शहरयार के बाद आज मेरे द्वारा लिया जाने वाला यह अगला साक्षात्कार था, जिसे लेना अनौपचारिक रूप से जितना आसान था, औपचारिक रूप से उतना ही कठिन, क्योंकि डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा एक मौन साधक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अपने कागज–पत्तरों को समेटते हुए कहा – ''बोलो, क्या पूछना चाहते हो।'' वे शायद किसी पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने के मूड में थे।

सबसे पहले आप अपने जन्म, परिवार आदि के विषय में बताइये?

मेरा जन्म 4 दिसम्बर सन् 1932 को अलीगढ़ में हुआ। पितामह पं0 बल्देव प्रसाद, मध्यप्रदेश की रियासत नरसिंहगढ़ में कस्टम अधिकारी थे। पिता श्री बालाप्रसाद शर्मा बैंक की सर्विस में थे। सर्विस में ट्रान्सफर भी होते थे, अतः वे कई स्थानों पर रहे। माँ श्रीमती सूरजमुखी देवी एक गृहस्थ महिला थीं। अपने भाई–बहनों में मुझे सबसे छोटा होने का श्रेय मिला।

अपनी शिक्षा–दीक्षा, कार्य–क्षेत्र के विषय में भी कुछ बतायें?

मैंने सन् 1943 में ग्वालटोली, कानपुर में म्यूनिसिपल बोर्ड की कक्षा 4 उत्तीर्ण की। 1946 में हाथरस में बर्नाक्यूलर फाइनल एग्जामिनेश यानी मिडिल पास किया। उन दिनों मिडिल का बड़ा क्रेज था और उसकी पढ़ाई भी कड़ी थी। मिडिल पास करने वाले 'मिडिलची' कहलाते थे। डॉ0 शर्मा आगे बताते हैं कि बागला इण्टर

कॉलेज से 1951 में हाईस्कूल तथा बारहसैनी कॉलेज, अलीगढ़ से 1953 में इण्टरमीडिएट और 1956 में बी0कॉम0 की परीक्षा उत्तीर्ण की। रुचि मूलतः साहित्य में थी, अतः बी0कॉम0 के बाद 1958 में हिन्दी साहित्य से एम0ए0 किया। एम0ए0 (हिन्दी) की कक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण उन्हें कॉलिज की ओर से स्वर्णपदक भी मिला। छात्र जीवन में पाठ्य सहगामी क्रिया–कलापों में खूब भाग लिया और विभागीय परिषदों तथा छात्र संघ में कई पदों पर निर्वाचित होते रहे।

सन् 1958 में ही डॉ0 शर्मा की नियुक्ति स्थानीय एच0बी0 इण्टर कॉलेज में हो गयी। वहाँ हिन्दी प्रवक्ता रहने के बाद सन् 1970 में 'हिन्दी साहित्य में अलीगढ़ जनपद का योगदान' (अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी) विषय पर शोध कार्य पर पी0एच0डी0 की उपाधि हासिल की और इसी वर्ष श्री वार्ष्णेय पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज में हिन्दी विभाग के प्राध्यापन कार्य करने लगे। जून 1993 में सेवानिवृत्त होकर अब वे स्वतन्त्र लेखन कार्य में संलग्न हैं।

लिखने की प्रेरणा आपको कब और कैसे मिली?

कविता लिखने की रुचि मुझमें उस समय उत्पन्न हो कई थी, जब मैं नवीं कक्षा का विद्यार्थी था। कॉलेज में विभिन्न कार्यक्रमों में तद्विषयक कविताएँ पढ़ने का अवसर मिलता रहता था। मेरी पहली कविता विधिवत् कलकत्ते के 'विशाल भारत' में सितम्बर–अक्टूबर 1953 में गीत रूप में प्रकाशित हुई। पहली हास्य–व्यंग्य कविता तत्कालीन हास्य–व्यंग्य पत्रिका 'नोक–झोंक' में सितम्बर, 1955 में छपी।

अधिकांशतः हर रचनाकार की प्रथम रचना कविता ही क्यों होती है?

कविता का सीधा हृदय से रागात्मक सम्बन्ध है। कविता मन के भावों को सहज रूप से व्यक्त करने में अधिक समर्थ होती है और रचनाकार को सन्तुष्टि देती है।

आपको व्यंग्यकार के रूप में अधिक जाना जाता है? व्यंग्य–लेखन की ओर आपने कब रूख किया?यह सायास था या अनायास?

पद्य के साथ–साथ मेरा गद्य–लेखन भी शुरू हो गया था, मन व्यंग्य–लेखन की ओर कब मुड़ गया, यह ठीक–ठीक कहना मुश्किल है। उपलब्ध रिकार्ड के अनुसार व्यंग्य लेख 'जब हम मातमपुर्सी में गये' साप्ताहिक हिन्दुस्तान में 21 मई 1961 को प्रकाशित हुआ। मैंने सायास ही कुछ भी नहीं लिखा। कविता, गीत, गजल, पुस्तक, दोहे, हाइकु, व्यंग्य आदि जिस विधा में अपने भावों को आसानी से व्यक्त कर सका, उसी को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

आपकी दृष्टि में व्यंग्य क्या है?क्या हास्य और व्यंग्य के बीच रेखा खींचना आवश्यक है?

व्यंजना वृत्ति के द्वारा की गयी अभिव्यक्ति व्यंग्य की संज्ञा पाती है। व्यंग्य का काम होता है, विसंगतियों और विद्रूपताओं पर प्रहार करना। मेरा विचार है कि हास्य रस व्यंग्य का विरोधी नहीं, अपितु उसका सहायक होता है। हास्य व्यंग्य की कड़वाहट को सुगर कोटिड बनाकर उसको सरलतापूर्वक गले के नीचे उतार देता है, लेकिन शिष्ट हास्य लिखना आसान बात नहीं।

आपने अपने व्यंग्यों में कोई स्थायी पात्र नहीं रखा, ऐसा क्यों?

स्थायी पात्र के माध्यम से लिखने में थोड़ी सुविधा रहती है, विषय को विस्तार भी मिल जाता हे, लेकिन अपने व्यंग्यों में किसी स्थायी पात्र को रखने का न तो मेरा मन हुआ और न मैंने उसकी जरूरत समझी। लिखने का अपना–अपना ढंग है।

आपने अब तक कितने व्यंग्य लिखे हैं और आपको अपना कौन सा व्यंग्य सबसे अधिक पसन्द है?

अब तक दस व्यंग्य–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त छपे और बिना छपे व्यंग्य लेख भी हैं, कुल मिलाकर चार सौ से अधिक ही होंगे। यों तो लेखक को अपनी सभी रचनाएँ अच्छी लगती हैं। जहाँ तक किसी एक व्यंग्य का प्रश्न है, तो मुझे अपना व्यंग्य लेख 'यदि नाक न होती' सर्वाधिक प्रिय लगना चाहिए, क्योंकि इसका चयन एन0सी0ई0आर0टी0 की पाठ्य–पुस्तक 'भारती' भाग 3 में किया गया और प्रतिवर्ष हजारों छात्रों ने इसे पढ़ा है।

आज के सन्दर्भ में क्या व्यंग्य अपने उद्देश्य में सफल है?वह अपना प्रभाव डालने में कितना सक्षम है?

व्यंग्य साहित्य की बड़ी सार्थक विधा है, पर सच कहा जाये तो, अन्य विधाओं की तरह व्यंग्य भी अपना अपेक्षित प्रभाव छोड़ने में समर्थ सिद्ध नहीं हो रहा है। व्यंग्य का असर तो तब हो, जब उन लोगों के द्वारा पढ़ा भी जाये, जिनको लक्ष्य करके लिखा जाता है। दूसरे, व्यंग्य को समझने का माद्दा भी होना चाहिए। संवेदनशीलता भी जरूरी है। महाकवि बिहारी के 'नहिं पराग, नहिं मधुर मधु' वाले एक दोहे ने राजा जयसिंह को प्रभावित कर दिया था, लेकिन आज का हाल अलग है –

कलम बिहारी की भला कैसे करे कमाल।

जयसिंहों की हो गई गेंडों जैसी खाल।

आपने साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त समाचार–पत्रों के स्तम्भों के लिए भी व्यंग्य लिखे हैं। कैसा अनुभव है इस बारे में? इस तरह समयबद्ध होकर लिखना, आपको असहज या बोझ सा नहीं लगता?

हाँ, मैंने 'दैनिक लोकतांत्रिक–विश्व दर्पण' के 'भैया जी' स्तम्भ के अन्तर्गत काफी दिन लिखा। 'अमर उजाला' के 'तरकश' तथा 'तीरे–नज़र' में भी लिखने का अवसर मिला। डी0एल0ए0 के स्तम्भ 'नोक–झोंक' में मेरे व्यंग्य छपते रहे हैं। सच यह है कि मन मेरे कहने से नहीं लिखता, मैं मन के कहने से लिखता हूँ। इसलिए लिखना मुझे असहज या बोझ सा नहीं लगता।

आपने लगभग सन् 1950 से लिखना शुरू किया था। पत्र–पत्रिकाओं में आप खूब छपे, लेकिन आपकी पहली पुस्तक व्यंग्य–संग्रह के रूप में सन् 1989 में प्रकाशित हुई और प्रथम काव्य–संकलन सन् 1992 में छपा। क्या ऐसा नहीं लगता कि आपको पुस्तक–प्रकाशन के मामले में देर हुई?

''ठीक कहा तुमने! इस दृष्टि से मैं रचनाधर्मियों की पिछड़ी जाति में रहा और मुझे आरक्षण भी नहीं मिला। इसके लिए खुद मेरा शैथिल्य कम दोषी नहीं। बरसों तक मैंने इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया।''

इस बीच बैठक की खिड़की में से धूप उतरकर मुझसे छेड़खानी–सी करने लगी थी। मैंने खिड़की के एक पल्ले को बन्द कर दिया। घड़ी देखी, तो डेढ़ बजा था, डॉ0 साहब के भोजन का समय हो गया था। माँ जी ने मुझसे भी खाने के लिए कहा। मैंने मना किया, फिर भी उन्होंने दो थालियाँ लगा दीं। मुझे डॉ0 साहब का साथ देना पड़ा।

भोजन के पश्चात् सिलसिला आगे चला। मैंने कहा – **''अब तक आपकी सम्पादित तथा सह–सम्पादित सात पुस्तकों के अलावा 23 मौलिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और कुछ प्रकाश्य हैं। आपके कैसे अनुभव रहे प्रकाशकों के सम्बन्ध में?''**

'प्रकाशक' शब्द आते ही उनके चहरे से यह संकेत मिल गया कि कुछ अनुभव खट्टे भी हैं। वे एक घटना सुनाते हैं कि दिल्ली के एक प्रकाशक ने दो पुस्तकें 'कथाओं के संग–संग' तथा 'चलते–चलते' (प्रथम संस्करण 2001–02) खुद ही सम्पादित कर लीं और परिचय का लाभ उठा कर सम्पादक के रूप में बिना बताये मेरे नाम का उपयोग, बल्कि यों कहें कि दुरुपयोग कर लिया। यही नहीं, एक पुस्तक में तो मेरे भी सात व्यंग्य लेखों को बिना मेरी स्वीकृति लिए छाप दिया। एक व्यंग्य लेख 'इधर भी मुसीबत उधर भी मुसीबत' पर लेखक की जगह हरीश चन्द्र गुप्ता का नाम डाल दिया। जबकि मेरी यह व्यंग्य–रचना मेरे व्यंग्य–संग्रह 'सारी प्लीज' (संस्करण 1996) में छप चुकी थी। प्रकाशक ने अपनी मर्जी से पुस्तकों पर 'सर्वाधिकार सुरक्षित' भी लिख मारा। क्या यह अन्धेरगर्दी नहीं?

और सम्पादकों के बारे में क्या कहना चाहेंगे?

इस सम्बन्ध में मैं 'श्री सम्पादकाय नमः' व्यंग्य लेख लिख चुका हूँ, जो व्यंग्य–विविधा' पत्रिका में प्रकाशित भी हुआ। वैसे सम्पादकों से मेरे सम्बन्ध प्रायः अच्छे ही रहे। हाँ! कभी–कभी सम्पादक वर्ग की लापरवाही कष्ट देती है। अभी दिल्ली के एक साप्ताहिक पत्र में भेजी हुई मेरी एक लघुकथा 'साक्षरता' श्री ओमप्रकाश बजाज के नाम से छप गयी। सम्भवतः ऐसा मुद्रण सम्बन्धी त्रुटि के कारण हुआ। मैंने सम्पादक महोदय को पत्र लिखा, लेकिन न तो उन्होंने त्रुटि–सुधार से सम्बन्धित कोई विज्ञप्ति छापी और न मेरे पत्र का उत्तर ही दिया।

मैंने अगला सवाल किया – **''आपके प्रिय साहित्यकार?व्यंग्कारों में आप किनको पसन्द करते हैं?''**

पढ़ना, पढ़ाना अपना काम रहा है। बी0ए0, एम0ए0 के पाठ्यक्रम में जो साहित्यकार पढ़ाने पड़े, उनका समीक्षात्मक दृष्टि से भी अध्ययन करना स्वाभाविक था। घनानन्द, बिहारी, मेरे विशेष प्रिय कवि रहे हैं। प्रसाद के 'आँसू', मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', निराला की 'राम की शक्ति पूजा', दिनकर की 'उर्वशी', 'परशुराम की प्रतीक्षा' आदि कृतियों ने अत्यन्त प्रभावित किया। महादेवी जी के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों को मैंने बड़े मन से पढ़ा। कथा–साहित्य में द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' तथा 'शिवानी' अत्यधिक रुचिकर लगे। जहाँ तक व्यंग्यकारों की बात है, मैंने नये–पुराने व्यंग्यकारों को पढ़ा है, यह कहना तो ठीक नहीं होगा कि कौन–कौन व्यंग्यकार पसन्द हैं। पसन्द के नाम बताने का अर्थ है अन्य व्यंग्यकारों से बुराई मोल लेना।

साहित्यकार होने के साथ–साथ शिक्षक, बल्कि यों कहें कि एक कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक रहे डॉ0 साहब के इस पहलू पर भी कुछ चर्चा करना आवश्यक लगा। मैंने कहा, **''आपने स्वयं एक शिक्षक का जीवन जिया है अतः शिक्षा और उसके हाल पर आप क्या कहना चाहेंगे?''**

वे कुछ देर चुप रहे, फिर बोले – ''व्यक्ति के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। शिक्षा के बिना विकास सम्भव नहीं। शिक्षा ही व्यक्ति को संस्कारवान् बनाती है और उसे सही तरीके से जीना सिखाती है। आज की शिक्षा का अर्थ व्यवसाय तक सीमित रह गया है। शिक्षा का प्रचार–प्रसार तो बढ़ा है, पर गुणात्मक स्तर गिरा है। अध्यापन और अध्ययन दोनों दृष्टियों से। पहले अध्यापन में पैसा कहाँ था?अध्यापक समर्पित भाव से इस क्षेत्रमें आता था। अब पैसा खूब है, पर अध्यापन कम। आज महँगी शिक्षा व्यवसाय के अनुकूल तो बना रही है, पर संस्कार नहीं दे पा रही है।

पुरस्कारों की चर्चा करते हुए मैंने डॉ0 साहब से कहा कि पुरस्कारों और जुगाड़ की जुगलबन्दी पर भी कुछ कहें।

उनके अनुसार लेखन का उद्देश्य पुरस्कार पाना नहीं है। वास्तविक पुरस्कार तो सहृदय और प्रबुद्ध पाठकों द्वारा लेखक की रचनाधर्मिता को स्वीकृति देना है। आज के पुरस्कार प्रायः विवादित हो गये हैं। जुगाड़बाजी तो चलती ही है। चलेगी भी। देखना यह चाहिए कि जिसे पुरस्कार मिला है, वह सर्वथा उसका पात्र है या नहीं। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार 'गोलकोण्डा दर्पण' मासिक के अंक (नवम्बर 2007) में विशद् रूप से व्यक्त किए हैं।

नेत्रदान या अंगदान के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है?

मानव शरीर नश्वर है। इसे विनष्ट होना ही है। व्यक्ति की मृत्यु होने पर यदि उसका नाशवान् शरीर किसी के काम आ सके, किसी को रोशनी या जीवन दे सके, तो इससे अच्छी बात और क्या होगी?

मैं खुद भी नेत्रदान के लिए अपने को दिनांक 04.09.2004 को पंजीकृत करा चुका हूँ। इसके अतिरिक्त, अंगदान ही नहीं, मैंने अपने देह–दान के लिए भी अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) नई दिल्ली को आवश्यक प्रपत्र विधिवत् भर 02.03.2006 को भेज दिए, लेकिन मेरे कई बार स्मरण कराए जाने के बावजूद वहाँ से कोई उत्तर नहीं आया। यह कैसी विडम्बना है कि हमारे यहाँ किसी कार्य के लिए प्रचार तो खूब किया जाता है, पर उस तरफ गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं दिया जाता है। मैं इस दिशा में पुनः प्रयास करूँगा। मैं अब भी यही चाहता हूँ कि मेरे अंग–दान और देह–दान की मेरी इच्छा पूरी हो। यदि ऐसा हो पाया तो मेरी आत्मा को अपार शान्ति मिलेगी।

डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा की लेखनी की स्याही अभी तक सूखी नहीं है। वे निरन्तर लिख रहे हैं। उनके विषय में डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर ने लिखा है – ''डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा के हाथ में एक सधी–मँजी कलम है। चपल खँजन सी फुदकती हुई।'' सो मैंने पूछा – ''आपकी कलम की और क्या तमन्ना है?

उनका उत्तर था – ''तमन्ना तो बहुत कुछ है। लिखना जारी है। अप्रकाशित सामग्री भी काफी है, उसे प्रकाशित होना है। देखते हैं कि समय कितनी मोहलत देता है और कितना, किस रूप में सामने आ पाता है।''

उनका नवोदित लेखकों के बारे में कहना यह है और उसे वे स्वयं पर भी लागू करते हैं –

भीड़ लग रही फनकाकरों की,
अलग दिखो तो बात बने।
ढेरों लिखा जा रहा यों तो,
खास लिखो तो बात बने।
स्वार्थ, यातना, भय के आगे,
अच्छे–अच्छे झुक जाते।
कलम रहे स्वाधीन निरन्तर,
नहीं बिको तो बात बने।

डॉ0 गोपाल बाबू शर्मा का सम्पर्क :
46, गोपाल विहार कालोनी,
देवरी रोड, आगरा, फोन – 09259267929

जयशंकर प्रसाद के काव्य में नव जागरण का उत्कर्ष

प्रोफेसर सुरेश चन्द्र

अस्मिता बोध को सुदृढ़ और मानवता को पुष्ट करने वाले अपने प्राचीन दर्शन, चिन्तन, जीवन–मूल्यों, सांस्कृतिक सरोकारों, आदर्शों, संस्कारों और विश्वासों से लोगों को लैस करके स्वस्थ–स्वतंत्र समाज का निर्माण करने के लिए जो उपक्रम भारत में किया गया उसे नव जागरण के नाम से जाना गया। राष्ट्रीय चेतना इस उपक्रम का अभिन्न अंग बनी। ज्ञान–विज्ञान के आलोक में जीवन की जड़ता और राजनैतिक पराधीनता से मुक्ति की उत्कट जनाकांक्षा के तहत इस उपक्रम का जीवन–व्यवहार के सभी क्षेत्रों में संघटन हुआ। डॉ0 राम विलास शर्मा के मतानुसार ''हिन्दी प्रदेश में नव जागरण 1857 ई0 के स्वाधीनता–संग्राम से शुरू होता है।''[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नवजागरण के संघटन में हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता के मोर्चों पर ऐतिहासिक योगदान दिया। साम्राज्यवादी यूरोपवासियों को महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जून 1924 ई0 के 'सरस्वती' में प्रकाशित अपने लेख के माध्यम से अवगत कराया था कि ''योरप के कुछ मदान्ध मनुष्य समझते हैं कि परेश्वर ने एशिया के निवासियों पर आधिपत्य करने के लिये ही उनकी सृष्टि की है। जिस एशिया ने बुद्ध, राम, कृष्ण, ईसा और कन्फ्यूसियस, रवीन्द्रनाथ और जगदीश चन्द्र बसु को उत्पन्न किया है, उसने गुलामी का ठेका नहीं ले रखा है।''[2]

जिस हिन्दी प्रदेश में नवजागरण प्रथम स्वाधीनता संग्राम के साथ प्रारम्भ हुआ उस प्रदेश में काशी (बनारस) हिन्दी अध्ययन–अध्यापन और हिन्दी साहित्य सर्जन का केन्द्र रहा है। वहीं के जयशंकर प्रसाद ने जहाँ छायावाद को प्रतिष्ठा दिलायी वहीं तत्कालीन समाज की आवश्यकता बन गये नव जागरण के साहित्यिक चरित्र को अपनी काव्य–कला से उत्कर्ष प्रदान किया।

अपने समय की विकट जीवन–परिस्थितियों से जूझ रही जनता में भावात्मक शक्ति का संचार करने के उद्देश्य से प्रसाद ने भारत के गौरवशाली अतीत को काव्य के माध्यम से जनानुभूति का विषय बनाया। नवजागरण विषयक प्रयोजन के तहत अतीत को वर्तमान में जिला देने की कला में प्रसाद पूर्णतः सिद्ध थे।

भारत भूमि मानवीय सम्वेदना से शृंगारित हुई है लेकिन बाहरी आक्रान्ताओं की शासकीय लिप्सा और कूटनीति ने इसके विपरीत परिवेश निर्मित करने में सफलता पायी। भारतीय परस्पर एक–दूसरे के प्रति असम्वेदनशील हो गये और परिणामस्वरूप बाह्य शासकों के अधीन कमजोर होता गया। औपनिवेशिक भारत में प्रसाद ने प्राचीन भारतीय जीवन शैली के महत्त्वपूर्ण घटक सम्वेदना को एक संबल के रूप में उपादेय सिद्ध किया है। इसके लिये वे भारतीय सर्जना के उस मूल सन्दर्भ [3] का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो आदि कवि वाल्मीकि के मुख से क्रीड़ारत क्रौंच युगल में से एक को बहेलिया द्वारा मार दिये जाने के दृश्य को देखने पर सम्वेदनावश सहज ही निसृत हुआ था।

ध्वंसजात सम्वेदना की सर्जनात्मक परिणति का यह उदाहरण उन्होंने तब प्रस्तुत किया जब प्रलय के बाद मनु अकेले चिन्ताग्रस्त बैठे हैं और श्रद्धा अप्रत्याशित रूप में आकर उनसे सम्वाद करती है। श्रद्धा द्वारा परिचय पाने के लिये मनु से जो प्रश्न किये जाते हैं, वे प्रश्न दुखी एवं निराश मनु को भारत केप्रथम कवि

वाल्मीकि का प्रथम छन्द जैसे लगते हैं –

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद।[4]

भारतीय नव जागरण का यह वह चेहरा है जो रचनाधर्मिता के मोर्चे पर घटित होकर परदुखकातरता की अपनी शिव संस्कृति से साक्षात्कार करा कर हमें जीवन–व्यवहार में सहिष्णु बनने को प्रेरित करता है, जो हम अनुभूति के स्तर पर न हरकर निरन्तर कमजोर पड़ते आ रहेथे। साहित्य–सर्जन में तो इतने कमजोर कि एक लम्बे अन्तराल के बाद 'कामायनी' जैसा जन–महाकाव्य अस्तित्व में आ पाया।

अस्मिता बोध का उन्मुक्त प्रस्फुटन भारतीय नवजागरण का प्रधान अंग रहा। सदियों–सदियों से दूसरों की अधीनता में जकड़ा भारतीय जन–मानस इस संदर्भ में शिथिल हो चुका था। प्रसाद ने बहुत सूझ–बूझ के साथ लोगों के अस्मिता बोध को जागरित किया। उन्होंने अपनों के बजाय विदेशी नागरिकों के द्वारा भारतीय महात्म्य का वर्णन कराकर अपनी अस्मिता का जो ध्वज फहराया वह दूसरों का मुँह ताकने के कायलों के लिये भी प्रेरणा का विषय बना। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस की पुत्री सिन्धु–तट पर जब भारतीय संगीत के पाठ का गायन करती है तब वह भारत के गौरव पर हर भारतीय के आन्तरिक सम्मान–भाव को जाग्रत करती है। द्रष्टव्य है कथन सहित कार्नेलिया द्वारा गाया हुआ गीत –

सिन्धु तट का यह मनोहर तट जैसे मेरी आँखों के सामने एक नया चित्रपट उपस्थित कर रहा है। इस वातावरण से धीरे–धीरे उठती हुई प्रशांत स्निग्धता जैसे हृदय में घुस रही है। लम्बी यात्रा करके जैसे मैं वहीं पहुँच गयी हूँ – जहाँ के लिए चली थी। यह कितना निसर्ग सुन्दर है –कितना रमणीय है। हाँ आज वह भारतीय संगीत का पाठ–देखूँ भूल तो नहीं गयी?गाती है –

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर – मंगल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु के पंख पसारे – शीतल मलय समीर सहारे।

उड़ते खग जिस ओर मुँह किये – समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल – बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनन्त की – पाकर जहाँ किनारा।
हेम – कुंभ ले उषा सबेरे – भरती ढुलकाती सुख मेरे।

मदिर ऊँघते रहते जब – जग कर रजनी भर तारा।

अरुण यह मधुमय देश हमारा।[5]

प्रसाद ने जन के मानस–पटल पर अस्मिता–बोध जीवन्त व सक्रिय बनाने हेतु अनेक कलात्मक प्रयास किये हैं। 'स्कन्दगुप्त' शीर्षक नाटक में स्कन्दगुप्त के द्वारा उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से इस संदर्भ में प्रार्थना करवायी है –

बजा दो वेणु मनमोहन! बजा दो।

हमारे सुप्त जीवन को जगा दो।

विमल स्वातंत्र्य का बस मंत्र फूँको।

हमें सब भाँति–बंधन से छुड़ा दो।

हमारा उन अँगुलियों का मिले हाँ?

रसीले राग में मन को मिला दो।

तुम्हीं सब हो इसी की चेनता हो?

इसे आनन्दमय जीवन बना दो।[6]

प्रसाद ने इसी नाटक में भारत की आर्य–सन्तानों को उनके पूर्वजों के चारित्रिक महात्म्य से परिचित कराने के लिये एक अन्य गीत में लिखा कि –

चरित थे पूत, भुजा में शक्ति नम्रता रही सदा सम्पन्न।

हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न।

वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।

वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य सन्तान।

जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।

निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।[7]

प्रसाद के आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध ने 'कामायनी एक पुनर्विचार' शीर्षक अपनी पुस्तक में लिखा है कि ''कामायनी अपने युग का अवैज्ञानिक, असंस्कृत, अपरिष्कृत प्रतिबिम्ब है। यदि वह सुपरिस्कृत प्रतिबिम्ब होता, तो तत्कालीन समस्याओं का यथार्थ हल भी प्रस्तुत किया जाता। उसमें जनता का पक्ष भी ऊँचा उठता, तथा अधिक मानवीय जनतन्त्रीय धरातल पर कथा की समाप्ति होती।''[8] जनतन्त्र की दहलीज पर जन के ही लिये असूझ–अज्ञेय बने रहे अन्धेरे में कैद श्री मुक्तिबोध का उक्त कथन उनके किसी अन्ध पूर्वाग्रह का उद्‌घाटन करने के साथ आलोचनाधर्म के प्रति उनके अन्याय को रेखांकित करता है।

किसी भी रचनाकार के लिये नव जागरण का तात्पर्य अपने युग के समाज को उसकी समस्याओं, भूलों, त्रुटियों, असमर्थताओं, अज्ञानताओं आदि से अवगत करा कर उनसे उबरने के सूत्र उपलब्ध कराने से होता है।

प्रसाद ने 'कामायनी' में यह कार्य बहुत शिद्दत से किया है। लेकिन आलोचना का टूटा चश्मा लगाये श्री मुक्तिबोध को यह सब दिखायी नहीं दिया। यहाँ 'कामायनी' के कुछ छन्दों के सन्दर्भों से श्री मुक्तिबोध के उक्त आक्षेप का निवारण और प्रसाद द्वारा इस कृति में संघटित नवजागरण के स्वरूप का उद्घाटन किया जा रहा है। कामायनीकार ने अपनी कृति में तत्कालीन भारतीय समाज का कितना अधिक वैज्ञानिक चित्रण किया है उसे इस कृति के निम्नांकित छन्दों में पढ़ा जा सकता है –

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्याएँ गढ़ती रचती हो अपनी ही विनिष्टि
कोलाहल कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो, बढ़े भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद
हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता
तब कुछ भी हो यदि धरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि
दुःख देगी यह संकुचित दृष्टि।[9]

यह छन्द इड़ा सर्ग के अन्तर्गत मुन के प्रति काम का कथन है। शाप–भावना लिये हुए यह कथन मानव–समाज के संदर्भ में भविष्यवाणी थी। काम की यह शापमयी भविष्यवाणी 'रहस्य' सर्ग के अन्तर्गत त्रिपुर–वर्णन में साकार होती है। यह त्रिपुर–वर्णन प्रसाद के युग का वर्णन है। इस वर्णन में मानवजन्य समस्याएँ उद्घाटित हुई हैं। इन समस्याओं का मुख्य कारण मानव–इच्छा, मानव–कर्म और मानव–ज्ञान में तादात्म्य का अभाव है। द्रष्टव्य हैं 'रहस्य' सर्ग के अग्रांकित छन्द–

सामंजस्य चले करने ये
किन्तु विषमता फैलाते हैं;
मूल स्वत्त्व कुछ और बताते
इच्छाओं को झुठलाते हैं।
स्वयं व्यस्त पर शान्त बने से
शस्त्र शास्त्र रक्षा में पलते;
ये विज्ञान भरे अनुशासन
क्षण क्षण परिवर्तन में ढलते।
यही त्रिपुर है देखा तुमने
तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने;

अपने केन्द्र बने दुख सुख में
भिन्न हुए हैं ये सब कितने।
ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।[10]

यह तो रही तत्कालीन समस्याग्रस्त समाज के प्रतिबिम्बन की बात, जो जनता की आँखें खोलने हेतु आवश्यक थी। अब प्रसाद द्वारा नव जागरण के धर्म के अनुपालन में, तत्कालीन युग की समस्याओं के समाधानों की जो प्रस्तुति 'कामायनी' में की गयी है उस पर दृष्टि डालिये। ज्ञान से दूर हो चुके कर्म–मार्ग को अपनाकर अपनी इच्छाओं के समाज का निर्माण करने की समझ विकसित करने की सीख देते हुए प्रसाद ने लिखा है –

कर्म यज्ञ से जीवन के
सपनों का स्वर्ग मिलेगा,
इसी विपिन में मानस की
आशा का कुसुम खिलेगा।[11]

प्रसाद ने मानव–समाज की समग्र समृद्धि में व्यक्ति केन्द्रित तानाशाही की संस्कृति को बाधक माना – जो पूरी तरह सच है। इसलिये उन्होंने सर्वजन–सुखबोध की संस्कृति का उद्घोष करके सारस्वत समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने लिखा –

अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा!
औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।[12]

प्रतिस्पर्धा जीवन में प्राप्त की जाने वाली उन्नति का सच है। 'Survival of the Fittest' का सिद्धान्त प्रकारान्तर से इसी तथ्य को ध्वनित करता है। स्पर्धा में आये बिना प्रतिरोधात्मक चरणों को न तो जीता जा सकता है और न अपने आपको, अपने समाज को तथा राष्ट्र को प्रतिष्ठा प्रदान की जा सकती है। भारतेन्दु ने स्वयं के द्वारा संघटित नवजागरण में भारत की उन्नति हेतु स्पर्धात्मक सोच विकसित करने हेतु भारतीयों का

आह्वान किया था। उनके शब्द इस प्रकार हैं – ''भाइयों, राजा महाराजाओं का मुँह मत देखो मत यह आशा रखो कि पंडित जी कथा में कोई उपाय भी बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो। कब तक अपने को जंगली, हूस, मूर्ख, बोदे, डरपोकने पुकरवाओगे। दौड़ो इस घुड़दौड़ में, जो पीछे तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है। 'फिर कब राम जनकपुर ऐहै'। अबकी जो पीछे पड़े तो फिर रसातल ही पहुँचोगे।''[13] प्रसाद ने भी अपने जन–उद्‌बोधन में लोगों को राष्ट्र–उन्नति हेतु स्पर्धात्मक जीवन–दृष्टि विकसित करने की पहल की। 'कामायनी के संघर्ष' शीर्षक सर्ग में उन्होंने लिखा है –

स्पर्धा में जो उत्तम ठहरें वे रह जावें,
संस्कृति का कल्याण करें शुभ मार्ग बतावें।
व्यक्ति चेतना इसीलिए परतंत्र बनी सी,
रागपूर्ण, पर द्वेष पंक में सतत सनी सी।
नियत मार्ग में पद पद पर है ठोकर खाती,
अपने लक्ष्य समीप श्रांत हो चलती जाती।
यह जीवन उपयोग, यही है बुद्धि साधना,
अपना जिसमें श्रेय यही सुख की आराधना।
लोक सुखी हो आश्रय ले यदि उस छाया में,
प्राण सदृश तो रमो राष्ट्र की इस काया में।[14]

प्रसाद ने यहाँ 'इड़ा' के माध्यम से प्रतिस्पर्धा को राष्ट्रीय स्तर पर घटित होने का संदेश सम्प्रेषित किया। कवि का मानना है कि व्यक्ति को विवेकपूर्ण ढंग से हर स्थिति में स्पर्धा में बने रहकर अपने और दूसरों अर्थात् राष्ट्रजनों के कल्याणार्थ प्रयत्नशील रहना चाहिये।

प्रतिस्पर्धा शक्ति–अर्जन के क्षेत्र में सर्वत्र देखी जाती रही है। स्वातंत्र्य प्राप्ति की समस्या से लेकर राष्ट्र–विकास की छोटी से बड़ी प्रत्येक समस्या का समाधान शक्ति–सम्पन्नता और उसके रचनात्मक उपयोग में अन्तर्निहित रहता है। प्रसाद द्वारा संचालित नवजागरण में शक्ति–अर्जन की सहज–सरल रीति अपनाकर तद्‌विषयक प्रतिस्पर्धा में अग्रगामी होने का मार्ग सुझाया गया है। मानवता को कैसे विजयी बनाया जा सकता है? इसमें शक्ति की क्या भूमिका है?शक्ति कैसे अर्जित की जा सकती है? इन सब प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रसाद ने लिखा है–

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।[15]

भारतीय नवजागरण पुनरुद्धार की भावना से स्पन्दित रहा। श्री बच्चन सिंह के शब्दों में ''नवजागरण

को हिन्दी में पहले पुनरुत्थान और बाद में पुनर्जागरण कहा जाने लगा। इसके अनन्तर राम विलास शर्मा ने इसे 'नवजागरण' की संज्ञा दी।''[16] जयशंकर प्रसाद द्वारा संघटित नव जागरण इस दृष्टि से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। जिन लोक नायकों से भारत का अतीत गौरवान्वित हुआ उनकी कथाओं की नवीन संदर्भों में पुनः प्रस्तुति करके भारतीय जन–साधारण को सशक्त आन्दोलन में परिवर्तित करने का काम अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों की शृंखला में प्रसाद ने बहुत सार्थक ढंग से किया।

'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' विषय पर केन्द्रित अपने उस व्याख्यान में जो सन् 1884 ई0 में बलिया के ददरी मेले में दिया था भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था कि – ''हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं। यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी–अच्छी और बड़े–बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजिन ये सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते। इनसे इतना कह दीजिए ''का चुप साधि रहा बलवाना'' फिर देखिये हनुमान जी को अपना बल कैसा याद आ जाता है। सो बल कौन दिखावै?''[17] देखा जाय तो ज्ञात होता है कि भारतुन्द्र हरिश्चन्द्र के इस प्रश्न का सही उत्तर जयंशकर प्रसाद ने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत दिया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संकेतित भारतीय जन के मनोविज्ञान को समझते हुए प्रसाद ने अपने साहित्य में भारत के गौरवान्वित अतीत को अचूक प्रेरक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया।

रामकथा हमारे देश में बहुसंख्यक जनों हेतु श्रद्धा और भक्ति का विषय है। इस कथा के घटकों (पात्र, घटना, स्थान आदि) का उजड़ना–बिगड़ना लोगों को किसी भी स्तर पर स्वीकार नहीं है। इस जन–भावना को ध्यान में रखते हुए प्रसाद ने 'अयोध्या का उद्धार' शीर्षक लम्बी कविता का सर्जन किया। अयोध्या के उद्धार के नाम पर प्रसाद ने तत्कालीन भारत के उद्धार की पहल इस कविता के द्वारा की है। यह कविता सन् 1918 ई0 में अन्य कविताओं के साथ उनके 'चित्राधार' शीर्षक कविता–संग्रह में प्रकाशित हुई। यह वह समय था जब अंग्रेजों की पराधीनता में उजड़ रहे भारतीयपन का उद्धार करके उसके संरक्षण हेतु चल रहा आन्दोलन जोरों पर था।

'अयोध्या का उद्धार' कविता में वर्णित है कि राम के बाद अयोध्या पर नाग वंश के कुमुद नामक राजा ने अपना शासन स्थापित किया। उसके शासन में अयोध्या का उजाड़ हुआ। अयोध्या की बदहाली से आहत होकर वहाँ की देवी ने कुशावती जाकर वहाँ के राजा श्री रामचन्द्र के पुत्र कुश से अयोध्या के उद्धार हेतु निवेदन (स्वप्न में) किया –

तुम छाइ रहे कुशवती अरु सोये रघुवंश की ध्वजा।
उठि जागहु सुप्रभात है जेहि जागे सुख सोवती प्रजा।।

X X X X X

''कुमुद'' नाम इक नाग वंश है समुझि ताहि यह बीर अंश है।
बिगत राम जनहीन दीन है निज अधीन करि ताहि लीन है।।
उजरी नगरी तऊ तहाँ मणि–माणिक्य अनेक हैं परे।
तेहि को अधिकार में किये सुख भोगै सब भांति सो भरे।।

रघु, दिलीप, अज आदि नृप, दशरथ राम उदार।

पाल्यो जाको सदय ह्वै, तासु करहु उद्धार।।[18]

अयोध्या की देवी के निवेदन पर कुश ने कुमुद को दूत के माध्यम से अयोध्या को छोड़कर चले जाने का संदेश भेजा। उसके न मानने पर कुश और कुमुद के मध्य युद्ध हुआ। पराजित होने पर कुमुद जान बचाकर भागा। अन्ततः कुमुद ने कुश के सम्मुख समर्पण किया। उसने न केवल अयोध्या का राज कुश को दिया, साथ ही अपनी बहिन कुमुद्वती का विवाह भी उसके साथ कर दिया। अयोध्या पुनः सुखों का साज बन गया –

कुश–प्रभाव लखि दीन होय के, कुमुद आप हिय माहिं जोय के।

निज–निवास महँ जायके छिप्यो तबहि दूत कुश को तहाँ दिप्यो।।

परमा रमणी कुमुद्वती धन–रत्नादि समेत संग लै,

कुश को मिलि तोष दीजिये नहिं तो सैन सजाव जंग लै।।

X X X X X

आयो तहँ कर जोरि, कुमुद कुमुद्वति संग लै।

बोल्यो वचन निहोरि, व्याहहु याको राज लै।।

X X X X X

कुश –कुमुद्वती को परिणय सबको मन भायो।

अवध नगर सुखसाज महा सुखमा सो छायो।।[19]

दुनिया में मानव–जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला घटक धर्म रहा है। यह सच है कि मनुष्य–समाज धर्म के सात्त्विक रूप से कम और इसके विकृत रूप से अधिक प्रभावित हुआ है। अपने सात्त्विक रूप में – ''मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।''[20] अपने विकृत रूप में धर्म ठीक इसके विपरीत भूमिका निभाता है, यानी धर्म मनुष्य–मनुष्य के मध्य भेद की भीति खड़ी करता है। इस रूप में हावी होकर धर्म ने लोगों के न केवल सुख–चैन को लूटा है बल्कि राष्ट्रों को तबाह तक किया है। समय–समय पर समाज के शुभ चिन्तकों ने लेगों को धर्म के वास्तविक स्वरूप से अवगत कराने हेतु जन–जागरण के कार्यक्रम चलाये। हमारे देश में धर्म की विकृत व्याख्याओं द्वारा धर्म के ठेकेदारों और शासकों ने बड़े स्तर पर जनहित को बाधा पहुँचायी है। धर्म के बेहद सम्वेदनशील मामले में प्रसाद ने लोगों को जाग्रत करने के लिये 'धर्मनीति' शीर्षक कविता अन्तर्गत सात्विक धर्म के स्वरूप का उद्घाटन किया है। प्रसाद ने इस कविता में स्पष्ट किया है कि धर्म वह है जो भेद–भाव का नाश कर लोगों में सद्भाव लाता है, नहीं तो वह एक लुटेरा कर्म है। यथा –

बाँधती हो जो विधि सद्भाव,

साधती हो जो कुत्सित नीति,

भग्न हो उसका कुटिल प्रभाव,

धर्म वह फैलावेगा भीति।

भीति का नाशक हो तब धर्म,

नहीं तो रहा लुटेरा–कर्म।[21]

नवजागरणकर्ताओं ने समाज नारी विषयक नव चेतना को विकसित किया। इस नवचेतना के केन्द्र में स्त्री–शिक्षा और जीवन–व्यवहार में स्त्री–पुरुष के मध्य समानता की स्थिति के मुद्दे थे। प्रसाद ने नारी विषय इस नव चेतना को व्यापक फलक पर वाणी दी है। उनकी 'कामायनी' में श्रद्धा और इड़ा दोनों नारी पात्रों की भूमिकाएँ इस नव चेतना का उद्घाटन करती है।

मनु जब श्रद्धा को छोड़कर सारस्वत प्रदेश में पहुँच जाता है, तब काम उसे नारी महात्म्य और नारी एवं पुरुष के मध्य समरसता के वास्तविक सम्बन्ध की स्थिति से अवगत कराता है–

मनु! तुम श्रद्धा को गये भूल।

उस पूर्ण आत्म विश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल।

तुमने तो समझा असत विश्व जीवन धागे में रहा झूल।

जो क्षण बीतें सुख साधन में उनको ही वास्तव लिया मान।

वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति का व्यर्थ ज्ञान।

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।

समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

जब गूँजी यह वाणी तीखी कम्पित करती अम्बर अकूल।

मनु को जैसे चुभ गया शूल।[22]

प्रसाद के नारी–जागरण का यह एक चरण चरण है। उन्होंने अपनी 'कामायनी' में नारी को पुरुष के समानान्तर उत्तरोत्तर श्रेष्ठ, कहना चाहिए महान बनते हुए चित्रित किया है। नारी के सक्षम स्वरूप के उद्घाटन के कारण प्रसाद एक महान नारीवादी सिद्ध होते हैं। वहीं मनु जो श्रद्धा को छोड़ कर चला आया था, 'निर्वेद' सर्ग में उसके महात्म्य का वर्णन करते नहीं थकता है। श्रद्धा के प्रति मनु के निम्नांकित शब्द ध्यान देने योग्य हैं –

तुम आज वर्षा सुहाग की

और स्नेह की मधु रजनी,

चिर अतृप्ति जीवन यदि था तो

तुम उसमें सन्तोष बनी।[23]

मनु ने अपने पति श्रद्धा के उपकार को गहराई से महसूसा तो वह उसके प्रति अपना आभार भी प्रकट करता है –

कितना है उपकार तुम्हारा

आश्रित मेरा प्रणय हुआ,
कितना आभारी हूँ, इतना
संवेदनमय हृदय हुआ।
किन्तु अधम में समझ न पाया
उस मंगल की माया को,
और आज भी पकड़ रहा हूँ
हर्ष शोक की छाया को।[24]

'कामायनी' का 'दर्शन' सर्ग नारी–महात्म्य प्रतिपादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस सर्ग में मनु श्रद्धा को संसार का कल्याण करने वाली देवी कहकर सम्बोधित करता है –

तुम देवि! आह कितनी उदार,
यह मातृमूर्ति है निर्विकार,
हे सर्वमंगले! तुम महती,
कल्याण मयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में हो रहती,
मैं भूला तुमको निहार,
नारी सा ही! वह लघु विचार।[25]

सरस्वती नदी के किनारे नीरव स्थान से जब मनु को कैलाश पर्वत पर शिव नृत्यलीन मुद्रा में दिखायी दिये तो उनके चरणों तक पहुँचाने के लिये भी मनु श्रद्धा से ही निवेदन करता है –

देखा मनु ने नार्त्तित नटेश,
हत चेत पुकार उठे विशेष,
''यह क्या श्रद्धे! बस तू ले चल,
उन चरणों तक, दे निज संबल,
सब पाप पुण्य जिसमें जलजल,
पावन बन जाते हैं निर्मल,
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनंद वेश।[26]

प्रसाद 'कामायनी' के 'रहस्य' सर्ग में नारी की पूर्ण प्रतिष्ठा करते हैं। श्रद्धा इस सर्ग में एसे गुरु के रूप में चित्रित हुई है जो एक भटके हुए मनुष्य को सच्चा ज्ञान अर्थात् प्रत्यभिज्ञा कराने में सक्षम होता है – अर्थात्

सच्चा गुरु। त्रिपुर में पहुँचने पर मनु जब त्रिपुर के रहस्य को समझने में असमर्थ रहता है तब श्रद्धा उसे वास्तविकता से अवगत कराती है –

मनु ने पूछा, ''कौन नये ग्रह
ये हैं, श्रद्धे! मुझे बताओ?
मैं किस लोक बीच पहुँचा, इस
इन्द्रजाल से मुझे बचाओ।
इस त्रिकोण के मध्य विन्दु तुम
शक्ति विपुल क्षमता वाले ये।
एक एक को स्थिर हो देखो।
इच्छा, ज्ञान, क्रिया वाले ये।[27]

भारत में जिस नारी को सदियों से चहारदीवारी में कैद रखकर भारतीय समाज ढोल और पशुओं की श्रेणी में गिना था, उसे प्रसाद ने प्रत्यभिज्ञा कराने में सक्षम बनाकर प्रस्तुत किया है।

भारतीय नव जागरण में अपनी भूमिका के लिये महादेव गोविंद रानाडे चर्चित हुए हैं। उनको प्रार्थना समाज का उन्नायक[28] माना गया है। ''उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मृत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार समाज जीवित अवयवों का संघटन है, जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है।''[29] अनेक बार ऐसा अनुभव किया जाता है कि मृत अतीत समाज के जीवित अवयवों को उनके परिवर्तन की प्रक्रिया में एक सशक्त सक्रियता प्रदान करता है। जब मनुष्यों के अन्तर्मन में ऐसी प्रक्रिया घटित होती तो उसे पुनरुत्थान नहीं, नवजागरणों का नवजागरण मानना चाहिए। प्रसाद ने अपने काव्य में ऐसे भी नवजागरण के अध्याय लिखे हैं। समाप्त होकर अतीत बन चुके भरत (दुष्यन्त–पुत्र) और जोरावर तथा फतह सिंह (गुरु गोविन्द सिंह के पुत्र) जैसे भारत–बालकों का अदम्य औद्धत्य और अनुपम शहीदाना अन्दाज सदियों–सदियों से परतन्त्रता की मार खाते रहे भारत के किस निवासी को स्वतंत्र होने के लिये नवीन क्रान्तिधर्मी साहस के साथ जाग्रत नहीं करता। प्रसाद की 'भरत' और 'वीर बालक' शीर्षक कविताएँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। जिस भारत को करोड़ों लोगों ने पराधीन बन जाने दिया उस भारत–साम्राज्य के संस्थापक भरत (बालक भरत) का प्रेरक औद्धत्य प्रसाद ने निम्नांकित प्रकार रूपायित किया है –

अहा! खेलता कौन यहाँ शिशु सिंह से
आर्यवृन्द के सुन्दर सुखमय भाग्य–सा
कहता है उसको लेकर निज गोद में –
'खोल, खोल, मुख सिंह–बाल, मैं देखकर
गिन लूँगा तेरे दाँतों को हैं भले
देखूँ तो कैसे यह कुटिल कठोर हैं।

X X X X

देख वीर बालक के इस औद्धत्य को
लगी गरजने भरी सिंहनी क्रोध से
छड़ी तानकर बोला बालक रोष से –
'बाधा देगी क्रीड़ा में यदि तू कभी
मार खायगी, और तुझे दूँगा नहीं –
इस बच्चे को; चली जा, अरी भाग जा'

X X X X

अहा, कौन यह वीर बाल निर्भीक है
कहो भला भारतवासी! हो जानते
यही 'भरत' वह बालक है, जिस नाम से
'भारत' संज्ञा पड़ी इस वर भूमि की

X X X X

जिसने अपने बलशाली भुजदंड से
भारत का साम्राज्य प्रथम स्थापित किया
वही वीर यह बालक है दुष्यन्त का
भारत का शिर–रत्न 'भरत' शुभ नाम है।[30]

मुगल शासक औरंगजेब की क्रूर धर्म–परिवर्तन नीति के आगे सिखों के दसवें गुरु गुरु गोविन्द सिंह के पुत्रों (जोरावर और फतह सिंह) ने जब अपने धर्म में अटल आस्था का परिचय देते हुए इस्लाम धर्म स्वीकार करने से मना कर दिया था, तब उनको जीते जी दीवार में चिनवा दिया गया था। स्वधर्म के लिये जोरावर और फतह सिंह का यह बलिदान नवजागरण–काल में उन भारतीयों के लिये, जो ईसायत के प्रभाव में आ रहे थे, सोचने का विषय था। प्रसाद ने 'वीर बालक' शीर्षक कविता में जोरावर और फतह सिंह की धार्मिक निष्ठा को निम्नांकित शब्दों में स्वर दिया है –

भारत का सिर आज इसी सरहिन्द में
गौरव मंडित ऊँचा होना चाहता
अरुण उदय होकर देता है कुछ पता
करुण प्रलाप करेगा भैरव घोषणा
पांचजन्य बन बालक–कोमल–कंठ ही

धर्म–घोषणा आज करेगा देश में
जनता है एकत्र दुर्ग के सामने

X X X X

मान धर्म का बालक–युगल करस्थ है
युगल बालकों की कोमल ये मूर्तियाँ
दर्पपूर्ण कैसी सुन्दर हैं लग रही
जैसे तीव्र सुगन्ध छिपाये हृदय में
चम्पा की कोमल कलियाँ हों शोभती

X X X X

सूबा ने कुछ कर्कश स्वर में वेग से
कहा – सुनो बालकों, न हो बस काल के

X X X X

किसने तुम्हें भुलाया है?क्यों दे रहे
जानें अपनी, अब से भी यह सोच लो
यदि पवित्र इस्लाम–धर्म स्वीकार है
तुम लोगों को, तब तो फिर आनन्द है

X X X X

ईंटों से चुन दिये गये आकंठ वे
बाल–बराबर भी न भाल पर, बल पड़ा–
जोरावर औ फतह सिंह के; धन्य हैं–
जनक और जननी इनकी, यह भूमि भी।[31]

वसुधैवकुटुम्बकम् विषयक भारत की प्राचीन मान्यता को नवजागरणवादियों ने मानवता के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आधुनिकता की एक आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया। परख की जाय तो यह जागरण अन्य प्रकार के जागरणों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक भी था। यह जागरण नवजागरण की मूल–चेतना को अपने अन्दर समाहित किये था। खास बात यह है कि इसकी जितनी अपेक्षा प्रसाद के समय में थी उससे कहीं अधिक आज अनुभव की जा रही है। प्रसाद ने 'कामायनी' में इस नितान्त अपेक्षित नवजागरण को प्रत्यभिज्ञा प्राप्त मनु के द्वारा स्वर दिया है। यथा –

मनु ने कुछ कुछ मुसक्या कर

कैलास ओर दिखलाया,
बोले ''देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं हैं;
तुम सठा मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।
शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है;
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है।[32]

बसुधैवकुटुम्बकम् की चेतना की आधारभूमि पर समरसता की स्थिति की निर्मिति और उसमें अखण्ड मानवीय आनन्द की अनुभूति हेतु मनुष्य (इकाई भूतरूप में) को सक्षम बना देना नवजागरण को उसका उत्कर्ष प्रदान करना है। कामायनीकार ने यह करके दिखाया है। 'कामायनी' के 'चिन्ता' शीर्षक प्रथम सर्ग में जो मनु भीगे नयनों को लेकर हमारे सामने उपस्थित होता है वही 'मनु' कामायनी के अन्तिम सर्ग 'आनन्द' में उस परिवेश में पहुँच जाता है, जहाँ–

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।[33]

अन्त में, उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि जय शंकरक प्रसाद के काव्य में भारतीय नव–जागरण अपने उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। इसके मूल में थी प्रसाद की वह सोच जिसके तहत वे परिवर्तन में ही नूतनता के आनन्द की विद्यमानता मानते थे। पुरातनता की केंचुल ओढ़े रहना उन्हें स्वीकार नहीं था –

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल।
पुरातनता का यह निर्भीक

सहन करती न प्रकृति पल एक,

नित्य नूतनता का आनन्द

किये है परिवर्तन में टेक।[34]

संदर्भ

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण, राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, 8–नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–1977, पृ0–09
2. उपर्युक्त, पृ0 15–16
3. मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।

   यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।
4. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1, द्वितीय संस्करण–1989, पृ0–45
5. चन्द्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मंदिर, गोवर्धन सराय, वाराणसी, संस्करण–1982, पृ0–79
6. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मंदिर, गोवर्धन सराय, वाराणसी–10, संस्करण–1987, पृ0–142
7. उपर्युक्त, पृ0–160
8. कामायनीः एक पुनर्विचार, गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली– 110 002, दूसरी आवृत्ति–2000, पृ0–127
9. कामायनी, पृ0–150
10. उपर्युक्त, पृ0–248
11. उपर्युक्त, पृ0–103
12. उपर्युक्त, पृ0–122
13. भारतेन्दु समग्र, सम्पादनः हेमन्त शर्मा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोहन, वाराणसी, तृतीय संस्करण जनवरी–1989, पृ0–1011
14. कामायनी, पृ0–174–175
15. उपर्युक्त, पृ0–59
16. हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, बच्चन सिंह, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली–110 002, द्वितीय संस्करण–1994, पृ0–55

17. भारतेन्दु समग्र, पृ0–1010
18. प्रसाद ग्रन्थावली (प्रसाद वाङ्मय खण्ड–1), सम्पादक : रत्नशंकर प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–1977, पृ0–12–14
19. उपर्युक्त, पृ0–15–16
20. इक़बाल की जिन्दगी और शायरी, सम्पादक : सुरेश सलिल, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण–2006, पृ0–19
21. प्रसाद ग्रन्थावली (प्रसाद वाङ्मय खण्ड–1), पृ0–203
22. कामायनी, पृ0–148
23. उपर्युक्त, पृ0–206
24. उपर्युक्त, पृ0–206–207
25. उपर्युक्त, पृ0–227
26. उपर्युक्त, पृ0–232
27. उपर्युक्त, पृ0–237–238
28. डॉ0 बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक : डॉ0 नगेन्द्र, सह–सम्पादकः डॉ0 हरदयाल, मयूर पेपर बैक्स, ए–95, सेक्टर–05, नोएडा–201 301, संस्करण–2009, पृ0–410
29. उपर्युक्त
30. प्रसाद ग्रन्थावली (प्रसाद वाङ्मय खण्ड–1), पृ0–215
31. उपर्युक्त, पृ0–223
32. कामायनी, पृ0–260–261
33. उपर्युक्त, पृ0–267
34. उपर्युक्त, पृ0–55

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
काँचीपुर, इम्फाल–795 003
मणिपुर

स्त्री-विमर्श

रजनी सिंह

आज स्त्री विमर्श बुद्धिजीवी वर्ग में चर्चा और वार्ताओं का अत्यन्त सामान्य विषय हो गया है। आखिर क्यों?क्या स्त्री आज अपने अधिकारों के प्रति अत्यन्त सजग हो गई है, इसलिए–या आज वह पुरुष के कहे जाने वाले क्षेत्र में अपनी भागीदारी चाह रही है इसलिए? प्रश्नों का लम्बा दौर और उत्तर का स्थान आज समाज के बदलते परिवेश में चिंतन का विषय बन गए हैं।

वास्तव में यदि हम व्यवहारिकता से बात करें, तो देखेंगे कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय बदला, परिस्थितियों ने करवट ली और रुढ़िवादिता के चंगुल में फँसी नारियों ने अपना अस्तित्व पहचाना। समाज और परिवार की अर्थहीन त्रासदी और दो नम्बर की श्रेणी से जकड़ी मानसिकता को समाप्त करना शिक्षित नारियों ने आवश्यक समझा और इसके लिये उसने शिक्षा की सर्वप्रथम आवश्यकता महसूस की। शिक्षा ने नारी को सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक और राष्ट्रव्यापी अनेक पहलुओं पर जानकारी प्रदान की। अब तक जिन विषयों पर वह मूक तथा मूढ़ समझी जाती थी, वह उसकी विशेषज्ञ बनने लगी और इसके कारण उसकी वृद्धि और अस्तित्व दोनों की गुणवत्ता जनसाधारण को समझ में आने लगी।

आर्थिक सक्षमता : धन, जीवन का बहुमूल्य भाग है। अब तक स्त्री 'पराधीन' और 'खूँटे की गाय' और 'आँगन की चिड़िया' नामों से पुकारी जाती थी, वह शिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ी होना सीख गई अर्थात् डॉक्टर, इंजीनियर और नौकरी के विभिन्न क्षेत्रों में उसने अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर ली। व्यावसायिक क्षेत्र में सर्वविदित है कि इंदिरा नुई, चन्द्रा कोचर जैसी अनेक हस्तियाँ दुनिया की सबसे अमीर हस्तियों में शामिल हो चुकी हैं। ''पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'' कहावत को चरितार्थ कर नारी ने अपना स्वअर्जित व्यक्तित्व बनाया।

'महिला' बिना परिवार के शरीर बिना आत्मा की तरह है। सृष्टि की रचयिता, पालनकर्ता और संहारिता अर्थात् भले बुरे का ज्ञान महिला की प्राथमिकता है। एक प्रतिभावान महिला परिवार की रीढ़ बन कर प्रत्येक कदम पर सुख, समृद्धि और शांति के लिए दृढ़ संकल्प बनी रहती है। कहा जाता है कि अंग्रेजी का GOD महिला के अर्थ को स्पष्ट करने में समर्थ है। 'G' for Governor / 'O' for Organizer and 'D' for Destroyer जिसका अर्थ भले बुरे की पहचान कराने वाला अर्थात 'स्त्री' है। स्त्री बच्चों के लालन–पालन से लेकर बुजुर्गों के प्रति सहयेाग, सहानुभूति और अतिथियों के आदर सत्कार में सदैव स्नेहमयी भूमिका निभाती है और अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सचेत रहती है। परम ईश्वरीय शक्ति श्री सीता का उदाहरण इस अभिप्राय को आज भी उतना ही सटीक और सार्थक बनाता है, जितना उस युग में था। वन जाने के प्रश्न पर सासु माँ, पतिदेव तथा अन्य सभी के समझाने पर भी उन्होंने अपने कर्त्तव्य को प्राथमिकता दीं। मुसीबत में पति का साथ देना उतना ही आवश्यक है, जितना पति द्वारा पत्नी को सहयोग देना। दूसरी तरफ पति राम ने सीता को हरण से छुड़ाने के लिए अपने प्राणों की शक्ति लगाकर सीता को राक्षसों से मुक्त कराया।

यह उदाहरण मेरे मत से प्रत्येक युग में अनुकरणीय है। समाज, जैसा हम करते हैं, उसी का अनुकरण करता है। अतः स्त्री एक ऐसा सक्षम नाम है, जो परिवार के साथ ही समाज का भी निर्माण करती है।

जिस राष्ट्र की 50 प्रतिशत जनसंख्या चूल्हे चौके तक सिमट कर रह जाए, उसका विकास कैसे सम्भव है? यह प्रश्न अत्यन्त गंभीर तथा विचारणीय है। भारतवर्ष इसका जीता जागता उदाहरण है। हजारों वर्षों की गुलामी का दंश 64 वर्षों के स्वतन्त्र वातावरण में भी अपना पूर्ण अस्तित्व नहीं जमा पाया। आज भी महिलाओं का 25 प्रतिशत वर्ग अशिक्षित, पराधीन और पुरुष प्रधान समाज के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। समाज में फैली कुप्रथाएँ स्त्री की सबसे बड़ी दुश्मन हैं, जैसे दहेज, भ्रूण–हत्या, बलात्कार और लड़की के प्रति दोयम मानसिकता। ये भेदभाव एक इंसान दूसरे इंसान के प्रति कैसे और क्यों करता है, यह अत्यन्त पीड़ा और अफसोस करने वाला विषय है। इसको तुरन्त समाप्त करना चाहिए, जिससे देश की इतनी प्रतिशत महिलाएँ भी विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायें। 'पति' शब्द आज की युवा महिलाओं के लिए अत्यन्त विचारणीय बना हुआ है, क्योंकि अहं की दीवारों से टकराता पति दूसरी शादी करने की धमकी देता है। तलाक आज की बहुतायत में देखी जाने वाली प्रथा हो रही है। यद्यपि इसमें लड़कियाँ भी जिम्मेदार हैं, जो शिक्षा का अर्थ स्वतंत्रता के स्थान पर स्वच्छंदता मान लेती हैं, लेकिन ऐसी लड़कियों की संख्या अभी कम है। आवश्यकता है कि समय रहते इन विषयों पर ठोस और अनुभवी कदम उठाए जाएँ, जिससे पारिवारिक प्रेम, सदभावना को और सुसंस्कृत बनाया जा सके।

देश को आज इंदिरा गाँधी, कल्पना चावला, किरन बेदी और साईना जैसी महिला हस्तियों की आवश्यकता है, जो विश्व स्तर पर भारत का नाम ऊँचाईयों तक पहुँचा सकें।

कहने के लिए बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु आवश्यकता आज इस बात की है कि 'महिला विमर्श' सच्चे अर्थों में ईमानदार पहल पर ही प्रशंसनीय है। अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी से पालन करते हुए, अपने परिवार, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं को देखते हुए यदि स्त्री अपने अधिकारों का भी लाभ उठाने के लिए सतर्क रहे, तो सच्चे अर्थों में स्त्री विमर्श का विषय प्रभावी है।

महिला सृष्टि, देश, समाज और परिवार की एक ऐसी मजबूत कड़ी है, जिसके बिना कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है। नारी, पुत्री, बहिन, पत्नी और माँ के रूप में आँगन का गुलाब बन कर जीवन की बगिया महकाती है। उसकी ममता, प्रेम और संवेदनात्मक आँचल के तले सब दुःख नगण्य हो जाते हैं। विज्ञान की खोज में वैज्ञानिकों ने पाया कि माँ के आँचल तले रोग भी समाप्त हो जाते हैं।

रजनी विला, डिबाई–202393
बुलन्दशहर, उ0प्र0

स्व. शंकर द्विवेदी की प्रगतिशील रचनाधर्मिता पाठकों में जीवन का स्पन्दन जागरित करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। अदम्य इच्छा–शक्ति के सम्बल से उन्होंने आधुनिक हिन्दी–कविता के समक्ष आशाओं का भण्डार उपस्थित किया है। जनजीवन के सजग शिल्पी श्री द्विवेदी जी मनुष्यता के उन्मुक्त गायक हैं। उनकी दो कविताएँ गीतात्मकता की भाव–सरणि से अनुप्राणित हैं।

– संपादक

पाती अनुप्रासों के नाम रूपकों की

शंकर द्विवेदी

पथ पर चार कदम आगे चलने का यह मत अर्थ करो –
पीछे वालों को अपनी क्षमताओं पर विश्वास नहीं।।
जिनको चलना है वे पीछे,
मुड़ कर देख नहीं पाते।
क्योंकि देखने वाले घटता,
अन्तर रोक नहीं पाते।।
सत्याग्रह के राजतिलक होने का यह मत अर्थ करो –
सेनानी सुभाष के पथ पर गर्व करे इतिहास नहीं।।1।।
भ्रम की गोदी में न सुलाओ,
तुम अपने शंकित मन को।
आँजो मत नयनों में शिर पर,
चढ़ने वाले रज–कण को।।
चार घड़ी पहले महके हो, इसका यह मत अर्थ करो –
ये उगते अंकुर जीवन में देखेंगे मधुमास नहीं।।2।।

11 जून, 1964

आवारा कहता है

शंकर द्विवेदी

जब से इस दुःखिया बस्ती की पीड़ा मैंने गले लगाई।
तब से यह बेरहम जमाना मुझको आवारा कहता है।।

बन्दनवार बँधे द्वारों से जब देखीं लौटीं बारातें।
हल्दी चढ़ी किसी दुलहिन के साथ भीगतीं, रोती रातें।।
जब मण्डप के मूक रुदन पर दीवारें तक तरस रही थीं।
आँगन में तुलसी की अँखियाँ बेमौसम ही बरस रही थीं।
जब–जब व्यर्थ बहा रो–रो कर सूजी अँखियों से गंगाजल–

अपने सपन नहीं नहलाए, अपनी प्यास नहीं दुलराई।
तब से सावन का हर बादल मुझको अंगारा कहता है।।1।।

धूल भरे ये गाँव पुरातन, गौरव के अवशेष हमारे।
अन्तिम श्वास सहार रहे हैं जैसे टूटे हुए किनारे।।
जिन अँधियार भली गलियों में सूरज आने में शरमाया।
उनमें दिये जलाकर मैंने इस उदार मन को बहलाया।।
अपने लिए सभी जीते हैं, एक अगर मैं नहीं जिया तो –

डगर–डगर में बिछे शूल चुन–चुन जब से आग लगाई।
तब से उपवन का उपवन ही मुझको बंजारा कहता है।।2।।

भले नन्दिनी के क्रन्दन पर पिघल–पिघल जाएँ प्रतिमाएँ।
पर दिल्ली के बेटे अपनी आँखों में आँसू क्यों लाएँ।।
अब निराश लौटा देते हैं निर्धन की पूजा की थाली।
चाँदी के जूतों की केवल करते हैं मन्दिर रखवाली।।
तन के गीत अधिक गाने से मन को कालिख लग जाती है –

ऋषियों की यह पावन वाणी, अपनी भाषा में दुहराई।
तब से यह नवीन युग मुझको बीता पखवारा कहता है।।3।।

11 जून, 1964

ग्राम–जान्हेरा, निकट खैर
जिला अलीगढ़।

कु. नेहा भारद्वाज हिन्दी–साहित्य की गहन अध्येता हैं। जीवन–संघर्ष की अजस्र पीड़ा के बावजूद इनका कवि–व्यक्तित्व आशावादी है। अनेक राष्ट्रीय मंचों पर इनकी काव्य–प्रतिभा जाज्वल्यमान हुई है। यहाँ उनकी दो कविताएँ प्रस्तुत हैं।

– संपादक

दो कविताएँ

कु० नेहा भारद्वाज

आँख मिचौली

सुख की
धूप पर
दुख की
जब –
छाया पड़ी;
उस घड़ी;
उस –
दो–घड़ी को
रुक गई;
मेरी नजर
चल पड़ी
वो उधर ...
थी जहाँ –
मंजिल नई
सुख की
धूप पर
दुख की जब ...

रिश्ता पुराना

आँसुओं से है –
मेरा रिश्ता पुराना
निकले जब टप–टप
आँख से ...
तब इनको जाना।
है नहीं पानी –
जो इनको रोक पाते
है नहीं वर्षा –
जो मनचाहा बहाते।
था गमों के साथ –
इनका आना–जाना;
निकले जब टप–टप
आँख से ...
तब इनको जाना।

दाऊजी का मंदिर,
बौहरान चौक,
डिबाई–202393 (उ0प्र0)

प्रगति-विवरण

(पं0 बैजनाथ शर्मा प्राच्य विद्या शोध–संस्थान, हाथरस)

प्रस्तुति– **डा0 राजेश कुमार**

वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापक

पी0सी0 बागला कालेज, हाथरस (उ0प्र0)

हाथरस। पं0 बैजनाथ शर्मा प्राच्य विद्या शोध संस्थान के तत्वावधान में कवि–गोष्ठी का आयोजन आर0डी0 गर्ल्स कॉलेज में हुआ, जिसकी अध्यक्षता डा0 रश्मि रेखा पाण्डेय ने की। इस अवसर पर डा0 अशोक शर्मा एवं डा0 रश्मि रेखा पाण्डेय ने सरस्वती चित्र पर माल्यार्पण किया। इसी प्रकार दोनों ने पं0 बैजनाथ शर्मा के चित्र पर मार्ल्यापण किया, जबकि दीप–प्रज्वलन डा0 रश्मि रेखा पाण्डेय तथा डा0 अशोक शर्मा ने संयुक्त रूप से किया। इस कवि–गोष्ठी में डा0 महावीर द्विवेदी, डा0 अशोक शर्मा, डा0 विष्णु विराट गुजरात, डा0 ज्ञानेन्द्र माहेश्वरी, डा0 शशिभूषण शर्मा 'चेतन' एटा, राहुल द्विवेदी, डा0 नीता कौशल, डा0 रुखसाना तथा डा0 जगदीश लवानियाँ इत्यादि प्रतिष्ठित कवियों ने हिन्दी की लोकधर्मी परम्परा की प्राण–चेतना से अनुस्यूत कविताओं का सस्वर वाचन किया। इस अवसर पर सभी कवियों को शॉल उढ़ाकर तथा सूटकेस प्रदान कर सम्मानित किया गया।

कवि–गोष्ठी का शुभारम्भ डा0 ज्ञानेन्द्र माहेश्वरी की सरस्वती वन्दना से हुआ, जिसमें उन्होंने सरस्वती कृपा की भाव–सरणि को जीवनोपयोगी बताकर अपनी सार्थकता सिद्ध की। इसी शृंखला में जीवन और जगत् की कर्त्तव्यमयी भावधारा को पुष्ट करने वाले डा0 महावीर द्विवेदी की कविताएँ श्रोताओं को रससिक्त करती चली गईं। उनकी कविताओं में प्राण–संस्कृति की आस्था का प्रवेग जाज्वल्यमान हो उठा। डा0 द्विवेदी की निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुचर्चित तथा बहुप्रशंसित हुईं –

''गुण्डों की गुण्डई अब पूरे शबाब पर है।
ये लोकतंत्र शायद अन्तिम पड़ाव पर है।
इस आदमी से मिलिए पर दूर से मिलिए।
ऐसा न हो कि ये आदमी की शक्ल में बम हो।
ऐसा भी कोई रास्ता अब तो निकालिए।
मन्दिर से शुरू होके मस्जिद पै खत्म हो।।

इसी शृंखला में डा0 अशोक शर्मा ने 'साँकलें टूटी पड़ी हैं, द्वार जब सबको खुले हैं, लोग जानें क्यों मुझे बदनाम करने पर तुले हैं।''

गीत से लोकधर्मिता की शाश्वत चेतना का निरूपण किया। डा0 शशिभूषण शर्मा 'चेतन' की काव्य–पंक्तियाँ बुद्धि और मन की प्राण–संस्कृति से उद्गीरित हुईं, जिनको श्रोताओं ने सराहा–

''ये कहानी है पुरानी दोस्तो।
स्वार्थ में दुनिया दिवानी दोस्तो।
डाल चेहरे पर शराफत की नकाब,
कहर ढाती बेईमानी दोस्तो।''

अन्त में कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहीं डा0 रश्मि रेखा पाण्डेय ने अपनी 'प्रतीक्षा' कविता सुनाई। इस अवसर पर डा0 राजेश कुमार, डा0 सुनन्दा महाजन, डा0 संध्या सिंह, डा0 कृष्णानन्द त्रिपाठी, डा0 कमला मिड्ढा, आशा शर्मा, अलंकार शर्मा, डा0 जगदीश लवानियाँ, विजय कुमार शास्त्री, मनीष, अशोक शर्मा 'पतले गुरू', देवेश, दुर्गेश, मदनमोहन दालवाले, त्रिलोकीनाथ अग्रवाल, वैद्य मोहन ब्रजेश, भगवती प्रसाद, गोविन्द उपाध्याय, केशव कुशवाहा, डा0 गणेश इत्यादि की उल्लेखनीय भूमिका रही।

ईक्षण

डा० ज्ञानेन्द्र माहेश्वरी

मनीषी
अमीषी
देह
के
देह
से
संगमन
के
क्षण
अनु
क्षण
में
सूक्ष्म
से

सूक्ष्म
तत्त्व
की
पलक
झपक
झलक
ललक
स्वत्व
की
जान
पहचान
जान
मान
ज्ञान।

सम्पर्क : साईं–ओशो'
माहेश्वरी नगर
डिबाई (उत्तर प्रदेश)
पिन : 202396

पाठकों के पत्र

आदरणीय राजेश जी,

सर्वप्रथम पत्रिका 'प्राच्य मंजूषा' के कुशल सम्पादन के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें। साथ ही पत्रिका के प्रवेशांक और द्वितीय अंक मुझे उपलब्ध कराने के लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

पत्रिका के दोनों ही अंकों को मैंने आद्योपांत पढ़ा। भारतीय प्राच्य विद्याओं के सम्बन्ध में लोगों में व्याप्त भ्रम–निवारण हेतु आपने जो बीड़ा उठाया है, वह निश्चय ही एक सराहनीय कदम है। आपके श्रम और लगन के साथ–साथ पतन की ओर जा रही भारतीय संस्कृति और सभ्यता को उबारने में आपकी देश–हित भावना, सदाशयता और शुभाकांक्षा भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। पत्रिका का आवरण, संपादकीय, लेख, यत्र–तत्र उद्धरित संस्कृत के श्लोक और सूत्र–वाक्य सभी भारतीय गौरव, गरिमा और पारम्परिक मूल्यों की पुनः स्थापना का संकेत दे रहे हैं।

कुल मिलाकर पत्रिका सुरुचिपूर्ण, प्रेरणाप्रद, ज्ञानवर्द्धक औरे सुमार्गदर्शिनी है। आपका प्रयास सराहनीय है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृत के मोह में फँसी–भारतीय युवा–पीढ़ी इससे प्रेरित होरक अपनी प्राच्य विद्याओं और मूल्यों के प्रति पुनः आस्थावान होगी।

डा0 (श्रीमती) सीमा अग्रवाल
असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज
मुरादाबाद (उ0प्र0)

❊ ❊ ❊

प्रिय सम्पादक 'प्राच्य मंजूषा'

राजेश कुमार जी,

आपके द्वारा प्रेषित 'प्राच्य मंजूषा' पत्रिका नियमित प्राप्त कर अभिभूत हूँ। हिन्दी साहित्य और संस्कृत भाषा का द्विपक्षीय समावेश पत्रिका की साहित्यिक सोच और समृद्धि का प्रमाण पेश करने में सक्षम है। सम्पादकीय मण्डल इसके लिए साधुवाद का पात्र है। त्रैमासिक पत्रिका अपने समृद्ध लेखों से सुसज्जित 'कालोन्यः कलनात्मकः' शत प्रतिशत शोभित करती है।

डॉ0 अशोक शर्मा का लेख अत्यन्त समीचीन तथा सार्थक लगा। आज के परिप्रेक्ष्य में संतोष और सोच की परिभाषा वैभव, दिखावा, होड़ और धन की अंधी दौड़ में बदल गई है। अतः दुःख सुख पर हावी है।

भारतीय काव्यशास्त्र और मलयालम काव्यशास्त्र पर डा0 शेषन् तथा प्रो0 टी0एन0 सतीशन के आलेख प्रभावशाली व पठनीय हैं। विद्वान लेखकों ने अपने–अपने अध्ययन और मनन से पाठकों को जानकारी का अच्छा खजाना दिया है। अन्य लेख भी प्रशंसनीय हैं।

रजनी सिंह
रजनी विला, डिबाई–202393 (बुलन्दशहर) उ0प्र0

संस्कृति, कला और साहित्य के उपासक तथा भारतीय मनीषा एवं मूल्यों के सजग प्रहरी डॉ0 राजेश कुमार के सुयोग्य सम्पादन में प्रकाशित यथा नाम तथा गुण की सकारात्मक सार्थकता संजोए पारदर्शिता का समय सापेक्ष दर्पण 'प्राच्य मंजूषा' का प्रत्येक अंक मननीय–मथनीय के साथ–साथ प्रशंसनीय संग्रहणीय भी है। प्रकृति–संस्कृति की झंकृति है – जनवरी, फरवरी, मार्च 2012 का अंकः 4 टंकार करते हुए। त्रैमासिक शोध परक इस पत्रिका के चिंतन का बहुरंगी पटल त्रिपार्श्व की रश्मियों की झलक है। डॉ0 अशोक शर्मा के अनन्य चिन्तन परक आलेख ने योग की सुदीर्घ परम्परा को बड़े थोड़े में अपने बामन डगों से नापने का स्तुल्य प्रयास कर योग की महनीयता प्रस्तुत की है। कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रकृति कवि संत–पंत पर प्रभाव पत्रिका का प्रभावी आलेख है। शोध छात्रा क्षमा कौशिक पूजनीय हैं। शंकर द्विवेदी जी के काव्य–भाव लोक का परिचय कराकर सम्पादक जी ने स्तुल्य कार्य किया है। कविताओं का अभाव बेचैन करता था, सो इस अंक ने परिपूर्ण किया है। हरेक अंक में काव्य–विद्या को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

डॉ0 ज्ञानेन्द्र माहेश्वरी
एम0ए0 (हिन्दी), पी–एच0डी0
साहित्य रत्न, एम0लिट्0,
'साई ओशो' माहेश्वरी नगर
डिबाई–202393 (उ0प्र0) बुलन्दशहर

❊ ❊ ❊

प्राच्य मंजूषा कालोन्यः कलनात्मक अंक 3 प्राप्त हुआ, हार्दिक बधाइयाँ।

इस अंक में डॉ0 अशोक शर्मा जी का ''नानक दुखिया सब संसार'' में शर्मा जी ने दुःखों के प्रकार एवं कारण का उल्लेख किया है और बताया है कि व्यक्ति सुख को भी सुख में व्यतीत नहीं करता अपितु दुःखी समय को स्मरण करके दुःखी होता है।

डॉ0 एम0 शेषन का ''भारतीय काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन'' में तमिल और संस्कृत काव्यशास्त्र के विकास की तुलनात्मक पृष्ठभूमि को उजागर किया गया है, जो ज्ञानवर्द्धक है।

प्रोफेसर टी0एन0 सतीशन का ''मलयालम काव्यशास्त्र पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव'' अच्छा है।

डॉ0 रामविलास सोहगौरा जी का ''रोग निदान एवं चिकित्सा'' का वर्णन पढ़ा, उसमें रोग एवं उनके निदान का वर्णन किया गया है। आचार्य वैद्य दिवाकर शर्मा जी का ''कैंसर चिकित्सा में भल्लातक प्रयोग'' निबन्ध में जिस तरह कैंसर जैसी भयंकर बीमारी से भल्लतक के सेवन से छुटकारा पाया जा सकता है, यह बताया गया है।

श्री देवेन्द्र कुमार जी ने ''नवगीत : मूल्यांकन के प्रतिमान'' पढ़ा, बहुत अच्छा है। श्री मदनमोहन जी ने 'प्रगति के सोपान' शीर्षक से पत्रिका के वार्षिक प्रगति विवरण का उल्लेख किया है।

यह पत्रिका दिनोंदिन समद्धि के पथ पर अग्रसर होती रहे यह मेरी शुभ कामना है।

भगवती प्रसाद
गाँव अल्लैहपुर, पोस्ट अल्लैहपुर (हाथरस)
जिला महामायानगर (उ0प्र0)

'प्राच्य–मंजूषा' के अंकों को पढ़कर सुखद अनुभूति हुई है। हाथरस की काव्य–भूमि से सर्जित यह पत्रिका दिनों–दिन नए मानकों का संस्पर्श करती रहे, ऐसी मेरी शुभकामना है। डॉ0 राकेश कुमार के संपादन–कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करने वाली यह पत्रिका श्लाघ्य है।

मनीष कुमार दुबे
श्री गाँधी आश्रम,
अतरौली (अलीगढ़)

❄ ❄ ❄

लेखकों से निवेदन –

1. कृपया अपने शोध लेख Krutidev 010, M.S. Word, Font size 15, Double space में ही भेजें।
2. 'प्राच्य मंजूषा' शोधपरक पत्रिका है। अतः स्तरीय शोधालेखों का हम स्वागत करते हैं।
3. कृपया मौलिक तथा स्तरीय लेख ही भेजें, क्योंकि पिष्टपेषण में हमारी अभिरुचि नहीं है।
4. अच्छे तथा मौलिक विचारों का हम स्वागत करते हैं।
5. हमारा प्रयास है कि शोधालेख तत्त्वाभिनिवेषी मनीषा से समलंकृत हों, ताकि हम पाठकों का अभिनन्दन पा सकें।

– सम्पादक

स्वत्वाधिकारी / प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक डा0 अशोक शर्मा (प्रबन्ध ट्रस्टी एवं अध्यक्ष – पं0 बैजनाथ शर्मा प्राच्य विद्या शोध संस्थान, हाथरस) द्वारा दिनेश प्रिंटिंग प्रेस, नौरंगाबाद, सिकन्दराराऊ (महामायानगर) में मुद्रित तथा श्याम मिल कम्पाउण्ड, नवीपुर रोड, हाथरस से प्रकाशित।

SHREE GANPATI INSTITUTE OF TECHNOLOGY

Invent The Future

Shree Ganpati Institute of Technology

(APPROVED BY AICTE & PCI, AFFILIATED TO MTU, NOIDA)

College Code 215

100% Campus Placement Assistance

Attractive Scholarship Schemes

B.Tech (CS,IT,EC,EN,ME,CIVIL)

M.Tech (CSE & ECE)

B.Pharm

M.Pharm

B.Arch*

MBA

BBA*, BCA*

MCA

Opp. Jindal Pipes Ltd., NH-24, Ghaziabad (Delhi-NCR)
Ph. : 0120-2809231-34, 96345 02288, 96345, 02299
Website : www.sgit.ac.in, E-mail : info@sgit.ac.in

* Subject to Approval

SMS SGIT to 56161

With Best Compliments from:-

KESHAV ENTERPRISES

AUTHORISED CCC OF SKF BEARINGS

Sales Office:
"Gooyee House",
Suite no. 72, 5th Floor, 109, N.S.Road,
Kolkata- 700 001
Mob- +91 9830093720 / +91 9836367300

Regd.office :
134, Salkia School Road,
Block 'A'; R/No : 203
Howrah - 711106
Ph: 26659792

E-mail: gopalrathi2010@gmail.com

Akshara industries ltd.

Manufacturers of Sponge Iron

AKSHARA INDUSTRIES LIMITED

183/1, Sydenhams Road,
Apparao Garden,
Choolai, Chennai 600 112
Ph: 26693316/17
E-mail: aksharaind@eth.net

OSWIN PLY
Assurance & Endurance
www.oswinply.com

ISO 9001 Certified Company

OSWIN WOOD PANELS PVT. LTD.

183/1, Sydenhams Road,
Apparao Garden,
Choolai, Chennai 600 112
Ph: 26690023 / 0156
E-mail: oswinply@eth.net

परम्परा, शुद्धता, विश्वास का अटूट बन्धन..!!

Annpurna™

AGMARK MASALE

Mfd. & Mktd. By :

TIRUPATI FOODS (Regd.)

Behind Jamuna Bagh, Aligarh Road, Hathras (U.P.)

Customer Care No. : 8881234123

TIRUPATI CHEMICAL INDUSTRIES

Manufacturer of High Quality Compund Hing, Rang, Gulal, Sindoor, Hawan Dhoop

CHOPAYYA WALA NOHRA, CHAWAR GATE, HATHRAS-204101

MUKESHA TIN WORKS

Manufacturer of all types Printed, Plant & Round Tind Containers

CHOPAYYA WALA NOHRA, CHAWAR GATE, HATHRAS-204101

Tirupati Packaging

Mfrs. - Composit Can, Contaners & Paper Tubes

Gopi Ganj, HATHRAS-204101

With Best Compliments from

Triloki Nath Agrawal
Cell : 9837072814

Mukesh Agrawal
Cell : 9837076907

Rakesh Kishor Gaur
Cell : 9897927312

email : mukeshagrawal20@ymail.com
tn.mukesh@gmail.com

TARANG
SEKSARIA
TRADERS
PILI KOTHI, HATHRAS-204101
Tel: 05722-230722, 231751, 98370 37992

प्रदेश के अग्रणी कापी एवं पॉलीथिन
से मुक्ति प्रदान करने हेतु नॉनबोबिग बैग
के निर्माता एवं विक्रेता

सेकसरिया ट्रेडर्स

पीली कोठी, सरक्यूलर रोड, हाथरस

दूरभाष :– 05722–230722, 231751

–: निर्माता एवं विक्रेता :–

तरंग, ज्ञान गंगा, सक्सैज, तरंग प्लस, तरंग आइडियल
आदि विभिन्न प्रकार की कॉपियाँ, लोंग नोट–बुक,
रजिस्टर, डुप्लीकेट, टाइटिंग प्लेट, रिंगडायरी

एवं नगर को पॉलीथिन मुक्त रखने के लिये

नॉनबोबिग क्लॉथ बैग

apex™
BEYOND ENERGY

APEX POWER SYSTEMS
Aligarh - Agra Highway, Near Maruti Showroom, Hathras, U. P. - 204101
E-mail : apexbattery@gmail.com, Web : www.apexpowersystem.com, M : 09997955777, 09897033897

सी0बी0एस0सी0 से सम्बद्ध
अंग्रेजी माध्यम का एल0के0जी0 से इण्टर तक
की अधुनातन शिक्षा और भारतीय संस्कार
प्रदान करने वाला श्रेष्ठतम संस्थान

सेकसरिया सुशीला देवी पब्लिक स्कूल

आगरा रोड, गिजरोली, हाथरस

05722-232311
05722-232295

डा० डी० के० मिश्रा
प्रधानाचार्य

श्री राधा बिहारी वृद्ध आश्रम

सम्पन्न वृद्धजन जो अकेले रहने के कारण परेशान हैं।
उनके लिए आधुनिक सुविधाओं सहित

भोजन और आवास

की प्रदूषण रहित, हरियाली युक्त, धार्मिक वातावरण में उचित व्यवस्था

सम्पर्क करें:- 9412276351, 9837467030

Website:www.shri.radhabiharivradhashram.org

पॉलीटेक्निक के पीछे, आगरा रोड, हाथरस (यू.पी.)

शक्ति ट्रेड वाल फेक्ट्री

A-क्लास, गवरमेन्ट एण्ड जनरल सप्लायर

शिवालिक पौली टैक्स, ढकपुरा, महामायानगर

प्रो० कमल राज पालीवाल
संदीप पालीवाल
सैल डिपो
पालीवाल पोली टैक्स
चक्की बाजार, महामायानगर

आपका
प्यारेलाल पालीवाल
मो०– 9319869738, 9219444454